भगवान श्री सीमंधर जिन-स्वागत-अंक

आत्मधर्म

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

वर्ष सातवाँ
अंक पाँचवाँ

: संपादक :
रामजी माणेकचंद दोशी
वकील

भाद्रपद
2477

साधक के साथी

आज 'मुक्ति-मंडप' का मांगलिक है। सर्वज्ञ परमात्मा श्री सीमंधर भगवान के पास श्री कुंदकुंदाचार्यदेव गये थे और उनकी साक्षात् दिव्यध्वनि सुनकर जो शास्त्र रचे हैं, उनमें अपूर्व अप्रतिहत भावों को उतारा है। उन भावों की जो प्रतीति करे वह अपनी मोक्षपरिणति को प्राप्त करते हुए बीच में सीमंधर परमात्मा को उतारता है कि हे परमात्मा! आप पूर्ण परिणति को प्राप्त हुए हैं; और आपको साथ रखकर हम भी साधक से पूर्ण होनेवाले हैं... बीच में विघ्न आनेवाला नहीं है... जिस भाव से साधकदशा में आगे बढ़े हैं, उसी भाव से पूर्ण करनेवाले हैं, उसमें फेर नहीं है - नहीं है - नहीं है.... सीमंधर भगवान की ॐकार ध्वनि में से कुंदकुंद भगवान वस्तु का स्वभाव लेकर आये थे... और... उसी की कुछ प्रसादी यहाँ भव्य मुमुक्षुओं को परोसी जा रही है....

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

77

एक अंक
चार आना

जैन स्वाध्याय मन्दिर : सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

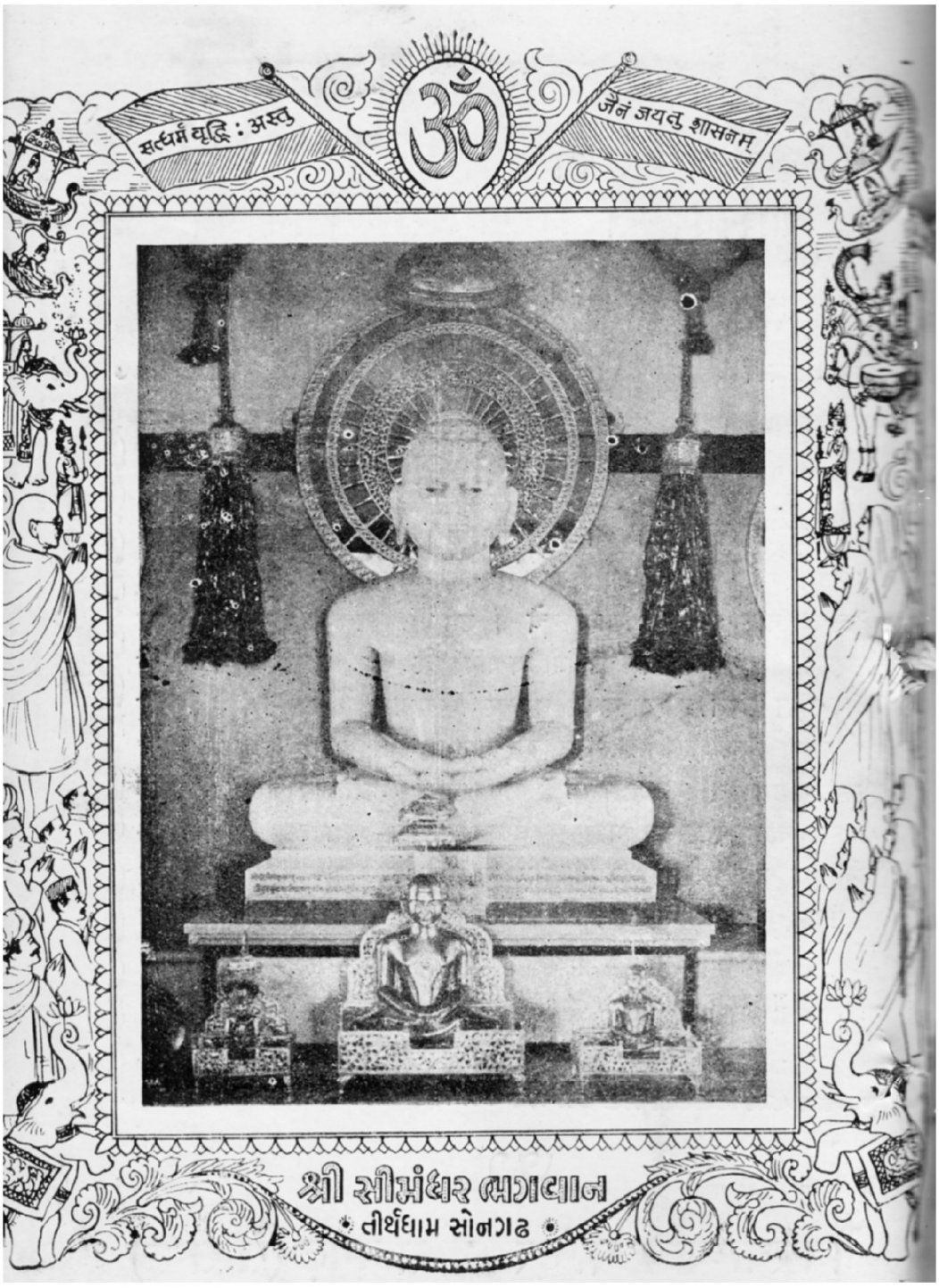
सत्यधर्म वृद्धि : अस्तु
ॐ
जैनं जयतु शासनम्
श्री सीमंधर भगवान
तीर्थधाम सोनगढ

आज भेंटे....वे भगवान

जिन्हें भेंटने के लिए भक्तजनों के अंतर में तीव्र आकांक्षा बनी रहती थी, वे भगवान आज भेंटे....।

पूज्य गुरुदेवश्री के प्रताप से सीमंधर भगवान आज भेंटे....

भक्तों के जीवनाधार भगवान आज भेंटे.....

आज से बराबर दस वर्ष पूर्व....धन्य वह फाल्गुन शुक्ला दोज ! सौराष्ट्र की भूमि में सैंकड़ों वर्ष बाद वीतरागी जिनबिंबों को पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा-महोत्सव का महान मंगल-प्रसंग, तीर्थधाम सोनगढ़ में, वीर सं. 2467 के फाल्गुन शुक्ला दोज के दिन सौराष्ट्र के धर्मधुरंधर पूज्य गुरुदेवश्री की छत्रछाया में हुआ था...सोनगढ़ के जिनमंदिर में सीमंधर भगवान की उस प्रतिष्ठा को आज दस वर्ष पूर्ण हो रहे हैं।

अहो ! उस महोत्सव के कल्याणक-दृश्य और भक्ति के उल्लास ! पूज्य श्री कानजी स्वामी के दिव्य प्रवचन...और उनमें भी बहती हुई सीमंधर जिनेश की भक्ति की अखंडित धारा...यह सब आज भी भक्तों के हृदय में झलक रहा है।

....उस समय इस 'आत्मधर्म' का जन्म नहीं हुआ था; किन्तु सीमंधर स्वामी की भक्ति में साथ देने के लिए यह समर्थ बना है.....और इसलिए सीमंधर प्रभु की भक्ति के इस मंगल प्रसंग पर 'भगवान श्री सीमंधर जिन-स्वागत-अंक' प्रगट करके यह अपने को कृतार्थ मान रहा है।

विदेहवासी.....हे सीमंधरनाथ ! आप 'सुवर्णधाम' में अथवा तो भक्तों के अन्तर में पधारने के पश्चात् इस भरतक्षेत्र के जिनेन्द्र शासन में अनेक-अनेक मंगल-वृद्धियाँ हुई हैं.....अहो प्रभो! आपका क्या-क्या सन्मान किया जाये ? किस प्रकार आपका स्वागत करें....! हे नाथ! आपके महान स्वागत के इस पवित्र महोत्सव में साथ देने के लिए यह 'स्वागत-अंक' आपके चरणों में अर्पण करके आपका स्वागत करते हैं.....आपका बहुत-बहुत सन्मान करते हैं....आपको भक्तिपुष्पों से सम्मानित करते हैं।

आचार्यदेव आत्मवैभव से शुद्ध आत्मा बतलाते हैं

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और अंतररमणतारूप चारित्रदशा वह आत्मा का निजवैभव है। समयसार की पाँचवीं गाथा में श्री आचार्यदेव कहते हैं कि जो कुछ मेरे आत्मा का निजवैभव है, उस प्रगट समृद्धि के सर्व सामर्थ्य से मैं इस स्व से एकत्व और पर से भिन्न आत्मा को दर्शाऊँगा। जैसे - जब गृहस्थ के यहाँ विवाद हो, उस समय जितनी समृद्धि हो, वह सब बाहर निकालता है, उसीप्रकार यहाँ समयसार में मोक्ष के मण्डप में श्री कुन्दकुन्दाचार्य भगवान अपने आत्मवैभव द्वारा शुद्धात्मा का वर्णन करते हैं। 'यह पंचमकाल है, हम छद्मस्थ हैं, तथापि हमने आत्मरिद्धि प्राप्त की है और पूर्ण ज्ञानी जो कह गये हैं, वही स्वानुभव द्वारा जगत के समक्ष रख रहे हैं। जितना हमारा अंतर-ज्ञानवैभव प्रगट हुआ है, उस सर्व से, आत्मानुभवरूप श्रद्धा के पूर्ण बल से इस एकत्व-विभक्त आत्मा को दर्शायेंगे।

श्री आचार्यदेव कहते हैं कि मैं स्वयं उत्तरदायित्व से कहूँगा, स्वयं जान-समझ कर अपूर्व आत्मा की बात निजवैभव द्वारा कहूँगा। इसप्रकार स्वयं अनुभव से वे कहते हैं। फिर विनय से ऐसा भी कहेंगे कि तीर्थंकर भगवान ने ऐसा कहा है। यहाँ आचार्यदेव सारा उत्तरदायित्व अपने ऊपर रखकर घोषित करते हैं, इसलिए जो कहेंगे, वह कहीं से ले लिया है - ऐसा नहीं है, किन्तु निजवैभव से स्वानुभव द्वारा आत्मा का अपूर्व धर्म कहते हैं और कहते हैं कि जिसप्रकार मैं अपने निज आत्मवैभव से कहता हूँ, उसीप्रकार तुम भी अपने स्वानुभव से प्रमाण करना।

- समयसार-प्रवचन से

धन्य वह सीमंधर प्रभु का प्रतिष्ठा महोत्सव

(श्री सीमंधर प्रभु के प्रतिष्ठा महोत्सव के अनेक उल्लासपूर्ण संस्मरण)

श्री जिनेन्द्रदेव के पंचकल्याणक अर्थात् दुनिया का सर्वोत्कृष्ट मांगलिक महोत्सव। वह पंचकल्याणक संसारी जीवों को कम करके मुक्त जीवों को वृद्धि करनेवाले हैं।

परम पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के पुनीत प्रताप से, सौराष्ट्र में ऐसे पंचकल्याणक के मंगल महोत्सव मनाने और देखने का सौभाग्य मुमुक्षुओं को पाँच बार प्राप्त हुआ है। उसमें सबसे पहला महोत्सव सोनगढ़ में श्री सीमंधर प्रभु की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के समय मनाया गया था।

वीर सं. 2467 के फाल्गुन शुक्ल दोज के दिन सोनगढ़ के जिन मंदिर में सीमंरध प्रभु की प्रतिष्ठा हुई। आज तो उस प्रसंग को दस वर्ष हो चुके हैं....तथापि भक्तजनों के हृदय में उस समय का उल्लास ज्यों का त्यों ताजा है.....उसका स्मरण होने से आज भी भक्तजनों के हृदय भक्ति-रस से भीग जाते हैं।

वीर संवत् 2465 में पूज्य स्वामीजी संघसहित पालीताना-शत्रुंजय क्षेत्र की यात्रा को गये... वहाँ भगवान के दर्शन करते-करते किन्हीं बिरले भक्तों को ऐसी भावना जागृत हुई कि - 'अरे रे ! अपने को साक्षात् भगवान का तो विरह है, किन्तु भगवान की वीतरागी मुद्रा के भी दर्शन प्राप्त नहीं होते।' ऐसे भाव होने से सोनगढ़ में वीतरागी प्रतिमा की स्थापना करने की इच्छा जागृत हुई.....पश्चात् भगवान की स्थापना की, यह भावना बढ़ते-बढ़ते पूज्य स्वामीजी तक पहुँची और उन्हें भी वीतरागी जिनप्रतिमा की स्थापना के भाव हुए और एकबार पद्मनन्दि पंचविंशतिका के

प्रवचन में जिनप्रतिमा संबंधी ऐसी बात आई कि – 'जो भव्य जीव छोटे से छोटा भी जिनमंदिर बनवाकर और जौ जितनी प्रतिमा की स्थापना करता है, उसे भी ऐसे पुण्य की प्राप्ति होती है कि साक्षात् सरस्वती भी उसके पुण्य का वर्णन नहीं कर सकती, फिर दूसरों की तो बात ही क्या !' पूज्य गुरुदेव के मुख से यह बात सुनकर राजकोट के सेठ श्री नानालालभाई तथा उनके बंधुओं को सोनगढ़ में वीतरागी जिनमंदिर बनवाने की भावना हुई और उनकी ओर से जिनमंदिर की स्थापना हुई। इसप्रकार भक्तों के अंतर की गूढ़ भावना के बीज अंकुरित हुए और सचमुच सीमंधर भगवान से भेंट हुई....।

प्रतिष्ठा से पूर्व माघ शुक्ला दोज के दिन सुप्रभात में सूर्य की किरणें बाहर निकलते ही मंगल मुहूर्त में अत्यन्त उल्लासपूर्वक श्री सीमंधरादि भगवंतों का ग्राम-प्रवेशोत्सव हुआ था। भगवान के पधारने पर प्रथम बार उनकी भव्य मुद्रा निरखते ही पूज्य स्वामीजी भक्ति से स्तब्ध हो गये... आँखों से आंसू बह चले। अभी भगवान की प्रतिष्ठा नहीं हुई थी, किन्तु पूज्य स्वामीजी भक्ति में ऐसे संलग्न हुए कि बारम्बार भगवान के निकट जाकर बैठते और दिन का अधिकांश समय भगवान के पास बैठकर व्यतीत करते....'चलते-फिरते प्रगट हरि देखूं रे...' – ऐसी उनकी उस समय की स्थिति थी। भगवान की मुद्रा इतनी भव्य थी कि गुरुदेव वह देखकर तृप्त नहीं होते थे...बार-बार प्रभु के निकट जाकर बैठते और भगवान की शांत मुद्रा देखकर कहते कि – 'अहो....

अमिय भरी मूरति रची रे... उपमा घटे न कोय,
शांत सुधारस झीलती रे.... निरखत तृप्ति न होय,
सीमंधर जिन...दीठां लोयण आज.....'

और बाहर से जो नये-नये भक्तजन आते, उनसे पूछते थे कि – 'तुमने भगवान देखे ? चलो...तुम्हें भगवान बतलाऊँ।' – ऐसा कहकर कमरे में ले जाकर बतलाते थे कि – देखो, यह हैं भगवान ! अपने यहाँ जिनकी प्रतिष्ठा होना है, वे यह भगवान हैं।

फाल्गुन कृष्णा 11 से फाल्गुन शुक्ला 2 तक भगवान की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का अठाई महोत्सव मनाया गया....जीवन में प्रथम बार पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का प्रसंग होने से और पहली बार ही भगवान की भेंट होने से भक्तजनों को अपूर्व उल्लास था...मानो प्रभु के पंचकल्याणक

साक्षात् ही हो रहे हों ऐसा लगता था....उस समय भक्तजन उल्लासपूर्वक गा रहे थे कि –

सुन्दर स्वर्णपुरीमां स्वर्ण–रवि आजे, ऊग्यो रे,
भव्यजनोना हैये हर्षानन्द अपार...
श्री सीमंधर प्रभुजी पधार्या छे अम आंगणे रे.....'

प्रतिष्ठा महोत्सव के इन दिनों में पूज्य स्वामीजी के व्याख्यान भी वीतरागी सीमंधर भगवान को भेंटने की धुन से भरे हुए होते थे...भक्तिरस के भावभीने उन प्रवचनों में बारम्बार भगवान को याद करते हुए पूज्य स्वामीजी अश्रुपूर्ण नेत्रों से कहते थे....हे भगवान! आपके विरह में आपकी स्थापना करके विरह को भुलायेंगे।' दस वर्ष पूर्व के वे प्रवचन आज भी मुमुक्षु भक्तजनों के हृदय को हिला देते हैं और उनके रोम–रोम में भक्ति जागृत करते हैं।

जिन भक्तजनों को इस प्रतिष्ठा महोत्सव को साक्षात् देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, उन्हें आज भी उस समय के उल्लास का वर्णन करते हुए तृप्ति नहीं होती और अत्यन्त प्रमुदित होकर कहते हैं कि अहो ! क्या कहा जाये। उस समय तो पहली बार ही प्रतिष्ठा–महोत्सव था....जीवन में जिन्हें कभी नहीं देखा था, उन भगवान से भेंट हुई...और उसी में मूलनायकरूप में श्री सीमंधर भगवान। फिर क्या बाकी रहता।' भक्तजनों के अंतरपट में अंकित हो गये उस धन्य प्रसंग के संस्मरणों का अंशमात्र आज दस वर्ष पूर्व बाद यहाँ शब्दारूढ हुआ है।

इस प्रतिष्ठा महोत्सव के समय 'कहान नगर' बसाया गया था...प्रतिष्ठा महोत्सव में एक हाथी भी आया था। प्रभुजी के जन्मकल्याणक आदि प्रसंगों पर 'कहान नगर' को प्रदक्षिणा देते समय वह हाथी भी ऐसी गंभीरता से प्रदक्षिणा करता था, मानो वह अपने को भगवान की भक्ति का सौभाग्य प्राप्त होने का हर्ष प्रगट कर रहा हो....अपने को धन्य मान रहा हो। ऐसा उसकी शांत गति देखकर भक्तों को लगता था।

फाल्गुन कृष्णा अमावस के दिन भगवान का जन्मकल्याणक हुआ, उस समय एक ओर जन्म की बधाई के मंगल वाद्य, दूसरी ओर दीपकों की जगमगाहट...आदि दृश्य देखकर कुछ समय के लिये तो यह क्या..... ? – ऐसे आश्चर्य में पड़ जाते थे और जब खबर पड़ती कि अहो ! यह तो भगवान के जन्म की बधाई है कि तुरन्त वातावरण उल्लास से भर उठता था। अहो ! वह प्रसंग साक्षात् देखने वाले तो कहते हैं कि उन दिनों हमें ऐसा ही लगता था कि यह सोनगढ़ मानों महाविदेह बन गया है और यहाँ सीमंधर भगवान के पंचकल्याणक हो रहे हैं।

हाथी पर भगवान के जन्मकल्याणक की भव्य यात्रा निकली थी। जन्माभिषेक के लिए नदी के किनारे मेरुपर्वत की रचना हुई थी। हजारों भक्तों के समूह के बीच जिस समय मेरुपर्वत पर भगवान का अभिषेक हुआ, उस समय आकाश ने ऐसा सुन्दर रंग धारण किया था मानों प्रभु के जन्माभिषेक को देखकर उनके चरणों में रंगबिरंगी सांथिया पूर रहा हो।

फाल्गुन शुक्ला एक के दिन भगवान के दीक्षा कल्याणक का प्रसंग था। उस समय दीक्षा वन में आम्रवृक्ष के नीचे भगवान का केशलोंच करते समय पूज्य स्वामीजी ने कहा था कि हे भगवान ! आप तो स्वयंबुद्ध हो...आप तो अपने हाथों से ही केशलोंच करते हो, किन्तु यह तो आपकी स्थापना होने से मात्र हमारा उपचार है।'

दीक्षा विधि पूर्ण होने पर वन में से लौटने का समय आया, उस समय भगवान को न देखकर अनेक भक्त पूछने लगे कि 'भगवान कहाँ हैं ?' और जब प्रतिष्ठाचार्य पण्डितजी ने उत्तर देते हुए कहा कि 'भगवान तो अब मुनि हो गये...अब वे अपने साथ नहीं आयेंगे...' उस समय सभी भक्त उदासचित्त होकर लौटे.... भगवान के बिना सब को सूना-सूना लग रहा था।

कुछ समय तक वन में विहार करके जब भगवान लौटे, उस समय स्वरूपानंद में झूलते हुए उन परम वीतरागी नाथ को निरखते ही जिस अत्यंतात्यंत भाव से पूज्य स्वामीजी ने उन्हें नमस्कार किया था...उस प्रसंग का भावभरा दृश्य भक्तों के स्मृतिपट पर आज भी तैर रहा है।

फिर जब मुनि हुए भगवान ग्राम में आहार के लिए पधारे, उस समय अति प्रसन्नतापूर्वक प्रभु को आहार देते समय भक्तों के हर्ष का पार नहीं था...ऊपर से रत्नवृष्टि हो रही थी...और जिस समय हाथ में खीर लेकर भगवान को आहार कराया, उस समय तो मानो साक्षात् भगवान को आहारदान दे रहे हों – ऐसा आह्लाद अंतर में जागृत होता था। 'अहो ! उस समय के भावों की क्या बात की जाये।'

पहली फाल्गुन शुक्ला दोज के दिन भगवान के केवलज्ञान कल्याणक का प्रसंग आया। भगवान को केवलज्ञान हुआ...दीपकों से जगमगाते हुए समवसरण की रचना हुई...उस समवसरण को देख देखकर भक्तजन भक्ति से नाचने लगे...और गाजे-बाजे के साथ समवसरण की प्रदक्षिणा करने लगे।

फाल्गुन शुक्ला दोज के दिन भगवान के निर्वाण कल्याणक प्रसंग पर पावापुरी का दृश्य हुआ। (प्रतिष्ठा में विधिनायक श्री महावीर भगवान थे।)

पंचकल्याणक के विविध प्रसंगों पर बारम्बार 'उदक चंदन....' आदि श्लोकों द्वारा जिनेन्द्र पूजन होती थी, वह भी सौराष्ट्र के मुमुक्षुओं के लिए आनंदाश्चर्यजनक था।

इस प्रतिष्ठा महोत्सव में पंचकल्याणक के नये-नये भक्तिपूर्ण दृश्य देखकर कठोर हृदय भी भक्ति से पिघल जाते थे....प्रतिष्ठा महोत्सव को देाकर श्री सेठ बेचरलाल भाई को उल्लास आ जाने से अपने बड़े भाई (श्री सेठ नानालालभाई) के पावों में गिरकर अश्रुपूर्ण आंखों से कहते थे कि 'भाई ! यह सब तुम्हारे प्रताप से हमें देखने को मिला है....' उस समय नानालाल भाई उत्तर देते....'भाई ! गुरुदेव का यह महान उपकार है।'

पंचकल्याणक के समय जब भगवान को मण्डप में लाते, उस समय पूज्य स्वामीजी भक्तिवश भगवान के पीछे ही चलते थे...मानो एक क्षण भी प्रभु से विलग नहीं रह सकते थे और अहो ! प्रतिष्ठित हुए श्री सीमंधर भगवान ने जब जिनमंदिर में प्रवेश किया, उस समय तो गुरुदेव मंदिर के द्वार पर ही उनका स्वागत करते समय नमित हो गये...मंदिर के द्वार पर प्रभु पधारते ही उनसे साष्टांग नमन हो गया....उस समय अनेक भक्तों के नेत्रों से भक्तिरस बरसता था...जिसप्रकार चक्रवर्ती जब स्वयं किसी के चरणों में गिर पड़े और वह दृश्य उसके सेवकों को नि:स्तब्ध बना दे....उसीप्रकार भगवान श्री सीमंधरनाथ के उन्मुख जब पूज्य स्वामीजी अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमित हो गये, उस समय सब भक्तजन इस दृश्य को नि:स्तब्ध होकर देखते रह गये...और कोई अनोखा ही वातावरण हो गया...वास्तव में ऐसे-ऐसे किन्हीं प्रसंगों पर भगवान के निकट बालक जैसे बन जाने वाले इन महात्माओं के हृदय के भावों को जानना कठिन हो जाता है। इस मुख्य प्रसंग का वर्णन करते हुए आत्मार्थी भाई श्री हिम्मतलाल भाई पूज्य गुरुदेव के जीवनचरित्र में लिखते हैं कि -

'जब सीमंधर भगवान मंदिर में प्रथम बार पधारे, उस समय गुरुदेव को भक्तिरस का नशा चढ़ गया और सारा शरीर भक्तिरस के मूर्तस्वरूप जैसा शांत शांत निश्चेष्ट भासित होने लगा। गुरुदेव से साष्टांग प्रणमन हो गया और भक्तिरस में अत्यन्त एकाग्रता के कारण शरीर ज्यों का त्यों दो-तीन मिनिट तक निश्चेष्टरूप से पड़ा रहा। इस भक्ति का अद्‌भुत दृश्य पास खड़े मुमुक्षुओं से सहन नहीं होता था, उनकी आंखों में आंसू और हृदय में अपार भक्ति उमड़ आई। गुरुदेव ने अपने परम पवित्र हाथों से प्रतिष्ठा भी, भक्तिभाव में मानों देह का भान भूल गये हों - ऐसे अपूर्व भाव से की थी।'

श्री सीमंधर भगवान की प्रतिमाजी इतनी अधिक भव्य सुन्दर और भाववाहिनी है कि उनके

दर्शन करनेवाले को तृप्ति भी नहीं होती....उनकी मुखमुद्रा भी मानों महाविदेहक्षेत्र में विद्यमान सीमंधर भगवान की मुद्रा से मिलती हो....ऐसा ही लगता है। जब चारों ओर प्रकाश हो तब तो शांत सुधारस झेलती हुई भगवान की मुद्रा उपशमरस से ओतप्रोत हो उठती है...इस पावनकारी भव्यमुद्रा के दर्शन से दूर दूर के यात्रीजन अपने को कृतकृत्य मानते हैं। वास्तव में –

'जेनी मुद्रा जोतां आत्मस्वरूप लखाय छे रे,
जेनी भक्तिथी चारित्र विमलता थाय....
अेवा चैतन्यमूर्ति प्रभुजी अहो ! अम आंगणे रे।'

भगवान की प्रतिष्ठा के पश्चात् राजकोट के मुमुक्षु संघ ने पूज्य गुरुदेव से राजकोट पधारने की प्रार्थना की, उस समय पूज्य स्वामीजी ने कहा कि 'यहाँ भगवान पधारे हैं, हमें तृप्त हो-होकर उनके दर्शन करना है, इसलिए इस वर्ष तो कहीं विहार करना ही नहीं है।'

सोनगढ़ के मंदिर में मूलनायक श्री सीमंधर भगवान हैं और उनके आसपास श्री पद्मप्रभु तथा श्री शांतिनाथ भगवान विराजमान हैं तथा श्री महावीर स्वामी, आदिनाथ स्वामी और श्री पार्श्वनाथ स्वामी भी हैं। जिनमंदिर के ऊपर के भाग में गिरनारवासी श्री नेमिनाथ स्वामी विराजमान हैं। वीर संवत् 2466के फाल्गुन शुक्ला दोज के दिन नेमिनाथ स्वामी की कल्याणक भूमि गिरनार के शिखर पर नेमिनाथ स्वामी की भक्ति तथा शुद्धात्मा का कीर्तन हुआ था...और 2467 के ठीक फाल्गुना शुक्ला दोज के दिन यहाँ जिनमंदिर में नेमिनाथ भगवान पधारे....मानों भक्ति ने भगवान को आकर्षित कर लिया।

इसप्रकार सोनगढ़ का यह प्रथम प्रतिष्ठा महोत्सव साक्षात् देखने का सुअवसर एवं सौभाग्य प्राप्त हुआ होगा, उनके अंतरपट में उस समय के उल्लासित संस्मरण आज भी गूंज रहे होंगे..अहो भाग्य है भक्तजनों का कि परम पूज्य गुरुदेवश्री के प्रताप से भगवान की भेंट हुई...और उन्हीं के महान उपकार से भक्तजन भगवान को पहिचानने लगे...आज भक्तजन गौरवपूर्वक बारम्बार कहते हैं कि –

'हे गुरुदेव...हे गुरुदेव ! आपके ही परम प्रताप से हमें यहाँ पर श्री सीमंधरादि जिनेन्द्र भगवन्तों की भेंट हुई....ऐसे-ऐसे सर्व प्रसंगों में हे कृपानाथ ! आपका ही महान उपकार है...हमारे जीवन में आपका परम उपकार है.....

जेनी द्वारा जिनजी आव्या भव्ये ओलख्या रे,
ते श्री कहान गुरुनो छे अनुपम उपकार...
नित्ये देव-गुरुनां चरणकमल हृदये बसो रे....

जिनप्रतिमा जिनसारखी

आज यहाँ के जिनमंदिर में भगवान श्री सीमंधरनाथ की प्रतिष्ठा का महोत्सव है, इसलिए मांगलिक है....भगवान के विरह के समय भगवान की प्रतिमा में उनकी स्थापना की जाती है। तीर्थंकर भगवान की वीतरागी प्रतिमा भी तीर्थंकर तुल्य है। देखो, पण्डित बनारसीदासजी कहते हैं कि - 'जिनप्रतिमा जिनसारखी' हे भगवान! आपकी वीतरागी ध्यानस्थ प्रतिमा को देखकर ज्ञायकबिम्ब का स्मरण होता है। ऐसी प्रतिमा को भगवानरूप से कौन मानता है ? तो कहते हैं कि -

'कहत बनारसी अलप भवथिति जाकी,
सोइ जिनप्रतिमा प्रमानै जिन सारखी।'

अंतर के चैतन्य भगवान आत्मा का जिसे लक्ष है और बाह्य में निमित्तरूप से पूर्ण दशा को प्राप्त श्री सर्वज्ञ परमात्मा को जिसे पहिचान हुई है, वे साक्षात् सर्वज्ञदेव के विरह के समय उनकी प्रतिमा को जिनवरतुल्य मानकर दर्शन-पूजनादि करते हैं। अहो ! भगवान ऐसे पूर्ण सर्वज्ञपद को प्राप्त हुए और

मेरा स्वभाव भी ऐसा ही है – ऐसी भावना से भी बहुत निर्जरा होती है। भगवान जैसा ही अपना स्वभाव है – ऐसे लक्षपूर्वक जो जिनप्रतिमा को जिनतुल्य मानता है, उसे विशेष भव नहीं होते।

श्री परमात्मप्रकाश में कहते हैं कि इस जीव को अनादि संसार में दो वस्तुएँ मिलना अत्यन्त दुर्लभ हैं। कौन सी दो वस्तुएँ ? एक तो शुद्ध सम्यक्त्व और दूसरे श्री जिनवर स्वामी ! जिनवर स्वामी कब मिले कहलाते हैं ? संयोगरूप से तो भगवान अनंत बार मिल गये, किन्तु अंतर में भगवान जैसे अपने आत्मा का लक्ष करे तो यथार्थ रूप में जिनवर स्वामी की भेंट हुई कहलाये। श्री कुन्दकुन्दाचार्य भगवान प्रवचनसार में कहते हैं कि जो जीव अरिहंत भगवान के द्रव्य–गुण–पर्याय को जानता है, वह जीव वास्तव में अपने आत्मा को जानता है और उसका मोह अवश्य क्षय हो जाता है। आत्मा को वास्तविक तत्त्वज्ञान प्राप्त होना अनंतकाल में दुर्लभ है। सच्चे देव–गुरु क्या कहते हैं, वह समझने का अवसर अनंतकाल में प्राप्त होता है। ऐसे प्रसंग का पूर्ण उत्साह के साथ अभिनंदन करना चाहिए। बाह्य प्रसंग तो उसके अपने कारण से होता है, किन्तु अंतर में यथार्थ समझने का का उत्साह होना चाहिए। आत्मा को समझने की दरकार बिना मात्र बाह्य की हो–हा करे तो उससे कल्याण नहीं है। आत्मा का भान होने के पश्चात् भी वीतरागी देव–गुरु के प्रति बहुमान और भक्ति का भाव तो आता है, किन्तु ज्ञानी उसे धर्म नहीं मानते, उस शुभराग में ही सर्वस्व मानकर उसमें अटक नहीं जाते। अज्ञानी तो उस राग में ही सर्वस्व मानकर, उसी को धर्म मानकर वहाँ अटक जाते हैं। अष्टाह्निका पर्व के समय अनेक सम्यग्दृष्टि जीव भी नंदीश्वरद्वीप जाते हैं और वहाँ शाश्वत विराजमान रत्नमणि के जिनबिम्ब के दर्शन–पूजन करके भक्ति से नाच उठते हैं। अंतरदृष्टिपूर्वक ज्ञानी की भक्ति के खेल अज्ञानी को समझना बहुत कठिन पड़ते हैं। भगवान की उपशांत प्रतिमा के सन्मुख तीन ज्ञानधारी एकावतारी सम्यग्दृष्टि इन्द्र–इन्द्राणी भी बालकों की भांति भक्ति से नाच उठते हैं। अंतर में चैतन्यबिम्ब आत्मा का भान है, ऐसी निश्चय की भूमिका होने पर भी निचलीदशा में वैसा राग बीच में आता है और उस राग के निमित्तभूत वीतरागी जिनबिम्ब है। ऐसे राग की और उसके निमित्त को बिल्कुल न माने तो वह अज्ञानी है और उस राग से या निमित्त से ही धर्म माने तो वह भी अज्ञानी है। वस्तुस्थिति को यथावत् जानना चाहिए।

श्री पद्मनन्दि पंचविंशतिका में प्रतिदिन करने योग्य श्रावक के छह कर्त्तव्यों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि –

देवपूजा गुरुपास्ति स्वाध्याय संयमस्तपः।
दानश्चेति गृहस्थाणां षट्कर्माणि दिनेदिने॥7॥

'ते सर्वने साथे तथा प्रत्येकने प्रत्येकने,
वंदु बली हुं मनुष्यक्षेत्रे-वर्तता अर्हंतने।'

श्री जिनेन्द्रदेव की पूजा, गुरु की उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान - यह छह कार्य गृहस्थों को दिनप्रतिदिन निरंतर करने योग्य हैं। सर्वज्ञ भगवान कैसे होते हैं, गुरु कैसे होते हैं, उनकी पहिचान की मुख्यतासहित यह बात है। मुनि तो ज्ञान-ध्यान में लीन रहते हैं, इसलिए उनकी बात अलग है, किन्तु गृहस्थ तो अनेक प्रकार के हिंसादि पापकार्यों में पड़े हैं, उन पाप भावों से बचने के लिए देवपूजा आदि का उपदेश है। इस उपदेश में गृहस्थों को इसप्रकार का राग होता

है, उसका ज्ञान कराया है। धर्म तो अंतर के ध्रुव चैतन्यस्वभाव के आश्रय से जो वीतरागी भाव होता है, उसी में है। अनादि वीतराग शासन का यह वर्णन है। यहाँ जिनकी स्थापना हो रही है, वे श्री सीमंधर भगवान इस समय महाविदेहक्षेत्र में भी यही बात कह रहे हैं। जो यह समझ ले, उसका कल्याण है। न समझने वाले तो परिभ्रमण कर ही रहे हैं, इसलिए उनकी तो बात ही क्या की जाये। भगवान के पंचकल्याणक में भगवान का कहा हुआ आत्मस्वभाव समझे तो कल्याण हो जाये। इसलिए आत्मा का स्वभाव क्या है, उसे समझने की ही मुख्यता है और वही धर्म का मूल है।

(लाठी शहर में श्री सीमंधरादि भगवंतों की प्रतिष्ठा के समय पूज्य स्वामी के प्रवचन से)

बादशाह की आज्ञा

विपरीत मान्यता-मिथ्यात्व यह 'बादशाही' गुणस्थान है। जिसप्रकार बादशाह की आज्ञा का कोई उल्लंघन नहीं करता, उसीप्रकार पर का कर्तृत्त्व मानना सो मिथ्यात्वरूप बादशाह की आज्ञा है; इसलिये पर का हम कर सकते हैं—ऐसी मान्यता का कोई अज्ञानी अस्वीकार नहीं कर सकता। पुण्य से धर्म होता है अर्थात् विकार से आत्मगुण प्रगट होता है—ऐसी विपरीत मान्यता से मोहरूपी भूत ने अज्ञानी जीवों को वश किया है।

भगवान के भक्त के हृदय में उछलती भक्ति की लहरें

(तीर्थधाम सोनगढ़ में भगवान श्री सीमंधर प्रभु की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के अठाई-महोत्सव के प्रसंग पर, वीर सं. 2467 के फाल्गुन कृष्णा 12 के दिन, पद्मनन्दिपंचविंशतिका में से श्री शांतिनाथ स्तोत्र पर पूज्य श्री कानजी स्वामी का भक्तिपूर्ण प्रवचन।)

1. वीतराग भगवान की भक्ति किसे उल्लसित करती है ?

इस देह मंदिर में चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा विद्यमान है, वह स्वयं शांति एवं सुखस्वभाव वाला है। शांति या सुख के लिए उसे देह-मन-वाणी की आवश्यकता नहीं है। देह और इन्द्रियों के लक्ष से माना हुआ सुख, सच्चा सुख नहीं है, किन्तु विकार है। जिसे आत्मा का भान नहीं है और लक्ष्मी आदि में सुख माना है, उस जीव को लक्ष्मी की रुचि होने से वह धनवानों की प्रशंसा करता है, और जिसे रागरहित आत्मा का भान है और वीतरागता अच्छी लगी है, वह जीव वीतराग परमात्मा को पहिचानकर उनका गुणगान करता है। जिसप्रकार घर में दो-चार धनवान मेहमान या कोई राजा आ जाये, वहाँ अज्ञानी लक्ष्मी की रुचिवाला उनका गुणगान करता हुआ कहता है कि ''आज मेरे यहाँ सोने का सूरज उदित हुआ....'' किन्तु उसमें तो मात्र ममत्व की पुष्टि है। यहाँ वीतरागता की भावनावाले भगवान के भक्त कहते हैं कि 'धन्य भाग्य' आज हमारे आंगन में भगवान पधारे....आज हमारे यहाँ सोने का सूरज उदित हुआ। इसप्रकार परमात्मा को जानकर उसका गुणगान करे, वह सच्ची भक्ति है। जिसप्रकार छह महीने के छोटे से बालक को पैसा क्या वस्तु है, उसकी खबर नहीं है, उसने तो मात्र माता का दूध ही देखा है, इसलिए उसे धनवान पर प्रेम कैसे आयेगा ? उसीप्रकार जिसने आत्मा के वीतरागस्वभाव को नहीं जाना, वीतराग भगवान को नहीं पहिचाना, उसे वीतराग भगवान पर सच्चा प्रेम नहीं आता। जिसे वीतराग का भान है, वह तो वीतराग भगवान को देखते ही भक्ति से उल्लसित हो जाता है।

यह शरीर तो हाड़-मांस आदि का पुतला है, यह तो अनाज, दूध आदि से बना है। आत्मा जिस समय माता के पेट में आया, उस समय इस शरीर को साथ में नहीं लाया था और अन्त में भी शरीर तो शमशान में रखा हो जायेगा और आत्मा अन्यत्र चला जायेगा। भीतर आत्मा देह से भिन्न है, वह नित्य स्थायी है। ऐसे आत्मा में ही सुख है, उसे भूलकर अज्ञानी जीव शरीर-प्रतिष्ठा-लक्ष्मी आदि बाह्य पदार्थों में सुख मानता है, इसलिए वह उनका बहुमान करता है, तो वह जीव सर्वज्ञ-वीतरागदेव का बहुमान कैसे कर सकता है ? देह और इन्द्रियों के बिना सच्चा सुख जिनके प्रगट हो गया है - ऐसे वीतरागी परमात्मा का स्वरूप जाने बिना उनका गुणगान नहीं हो सकता। जिसे विषयों में सुखबुद्धि है, वह कदाचित् भगवान के पास जायेगा तो वहाँ भी पुण्य और स्वर्गादि की प्रशंसा करेगा। हे परमात्मा ! आप पूर्ण हो गये हैं, आपके ज्ञान और सुख पूर्ण प्रगट हो गये हैं..मैं भी शक्ति में आप जैसा परिपूर्ण हूँ, तथापि अभी अवस्था में अपूर्ण हूँ...मेरा सुख मेरे स्वभाव में भरा है, वह प्रगट करने के लिए, आपकी पूर्णता का अनुमोदन करके, उसके गीत गाकर, संसार का प्रेम तोड़कर वीतरागता बढ़ाऊँगा।' जिसे ऐसा ज्ञान होता है, वही वीतराग प्रभु की सच्ची स्तुति करता है।

2. 'सीमंधर' भगवान की स्तुति

देखो, यहाँ श्री सीमंधर परमात्मा की प्रतिष्ठा हो रही है। वे सीमंधर परमात्मा इस समय महाविदेहक्षेत्र में साक्षात् विराजमान हैं। सीमंधर का अर्थ क्या। 'सीम' अर्थात् सीमा-मर्यादा और 'धर' अर्थात् धारण करने वाले, आत्मा के स्वरूप की मर्यादा को जो धारण करें, वे सीमंधर। आत्मा के ज्ञानस्वरूप की मर्यादा में राग-द्वेष नहीं है। इसप्रकार राग-द्वेष रहित ज्ञानस्वभाव की मर्यादा भगवान ने धारण की है अर्थात् भगवान के आत्मा को उत्कृष्ट ज्ञानदशा प्रगट हुई है। भगवान जैसे अपने आत्मा के स्वभाव को पहिचानना, सो भगवान की स्तुति है। भगवान की स्तुति कहो या भगवान का गुणगान। हे नाथ ! आप जैसी पूर्ण दशा मुझे प्रगट नहीं हुई है, किन्तु हे प्रभो ! जितना सामर्थ्य आप में है, उतना ही परिपूर्ण सामर्थ्य मुझमें भरा है, आप जैसे अपने स्वभाव में अपने द्वारा एकाग्र होने से राग दूर होकर सुख प्राप्त होगा....जिस प्रकार आप प्रगट परमात्मा हो गये हैं, उसीप्रकार मैं भी पूर्ण परमात्मा हो जाऊँगा। इसका नाम भगवान की भक्ति ! जिसे ऐसा भान नहीं है, वह वास्तव में भगवान का गुणगान या स्तुति नहीं करता, वह तो मात्र मिथ्यात्व, राग और पुण्य के गीत गाता है।

3. तीन छत्रों के वर्णन द्वारा त्रिलोकपति शांतिनाथ प्रभु की स्तुति

यहाँ पद्मनन्दि पंचविंशतिका के अधिकार में आचार्यदेव ने श्री शांतिनाथ भगवान की स्तुति की है। उसमें पहले श्लोक में कहते हैं कि –

त्रैलोक्याधिपति सूचनपरं, लोकेश्वरे सद्धृतं।
यस्योपर्युपरीन्दुमण्डलनिभं छत्रत्रयं राजते।।
अश्रांतोद्गतकेवलोज्वलरुचा निर्भर्सिताकं प्रभं।
सोऽस्मान् पातु निरंजनो जिनपतिः श्री शांतिनाथः सदा।।

जिनके मस्तक पर तीन लोक का स्वामित्व सूचन करनेवाले और चंद्रसमान, इन्द्ररचित तीन छत्र शोभित हो रहे हैं और निरंतर उदयमान ऐसी केवलज्ञान की निर्मल कांति द्वारा जिन्होंने सूर्य की प्रभा को भी ढंक दिया है और जो सर्व पापों से रहित हैं, ऐसे श्री शांतिनाथ भगवान सदैव हमारी रक्षा करो।

जो पूर्ण आत्मस्वरूप को प्राप्त हुए हों और पुण्य में भी पूर्ण हों, वे तीर्थंकर भगवान हैं। पूर्ण आत्मस्वरूप को प्राप्त करके मुक्त होनेवाले जीव अनेक होते हैं, किन्तु जो स्वयं पूर्ण आत्मस्वरूप को प्राप्त करके अपना कल्याण करें तथा अन्य लाखों-करोड़ों जीवों को कल्याण में निमित्त हों – ऐसे तीर्थंकर होनेवाले जीव तो बिरले ही होते हैं। भरतक्षेत्र में अन्तिम चौबीसी में शांतिनाथ भगवान सोलहवें तीर्थंकर हुए। इस समय तो वे मोक्षदशा में सिद्धरूप से विराज रहे हैं। किन्तु जब वे इस भरतक्षेत्र में तीर्थंकररूप से विचर रहे थे, उस समय का उपचार करके श्री आचार्यदेव उनकी स्तुति करते हैं।

भगवान को पूर्ण आत्मदशा प्रगट हुई है और भगवान के ऊपर भक्तिपूर्वक इन्द्र मणि-रत्नों के तीन छत्र रचते हैं, वह उनके पुण्य का अतिशय है। आचार्यदेव कहते हैं कि हे नाथ ! यह तीन छत्र यह सूचित करते हैं कि आप ही तीनलोक के नाथ हैं...तीन लोक में सार में सार हो तो वह अनंतज्ञान को प्राप्त हुआ आपका आत्मा ही है। इसके अतिरिक्त देह-मन-वाणी या इन्द्रिय विषय, पुण्य-पाप कोई इस जगत में उत्तम नहीं हैं।

4. गर्भकल्याणक प्रसंग पर इन्द्र द्वारा माता-पिता की स्तुति

देखो, यहाँ सीमंधर भगवान की प्रतिष्ठा में महावीर भगवान के पंचकल्याणक होंगे, उनमें बहुत कुछ आयेगा। जब गर्भकल्याणक होगा, तब इन्द्र आकर भगवान के माता-पिता की स्तुति करते हुए कहेंगे कि अहो ! धन्य माता !! और धन्य पिता ! हे माता ! आप जगत की माता हो। आपकी उज्ज्वल कूख में छह महीने के पश्चात् त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर का आत्मा आने वाला है। हे त्रिलोकीनाथ की जन्मदात्री ! हे जगत् माता ! आपके धन्य है ! अभी तो, भगवान का आत्मा स्वर्गादि में हो और वहाँ की आयु छह मास शेष रहने पर जहाँ तीर्थंकर भव की आयुष्य बंधे वहाँ तो इन्द्रों के आसन डोल उठते हैं और इन्द्र अवधिज्ञान से देखते हैं कि यह क्या ? अहो ! त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर भगवान छह महीने के पश्चात् इन माता की कूख में पधारने वाले हैं - ऐसा जानकर इन्द्र भी तीर्थंकर प्रभु के माता-पिता की प्रशंसा करते हैं और प्रतिदिन रत्नवर्षा होती है। भगवान के गुणों की यह सब महिमा है। जिस प्रकार आसोज शुक्ला पूर्णिमा के बिन्दु जिस सीपों में पड़ते हैं, वे सीपें भी असाधारण प्रकार की होती है और उनमें अमूल्य रत्नों की उत्पत्ति होती है, उसीप्रकार त्रिलोकीनाथ तीर्थंकरदेव का आत्मा जिनके यहाँ अवतरित हो, वे माता-पिता भी अल्पकाल में मोक्षगामी होते हैं। साधारण गृह में भगवान जन्म नहीं लेते।

5. भगवान के सच्चे भक्त और उनकी सच्ची स्तुति

भगवान जब बालकरूप से जन्म लेते हैं, उस समय इन्द्र उनकी भक्ति करते हैं...तब फिर भगवान को केवलज्ञान हो, उस समय मुनिवर और इन्द्र उनकी स्तुति करें, इसमें कौन से आश्चर्य की बात है। भगवान तो वीतराग हैं। भगवान की सभा में कोई तत्त्वज्ञान का सीधा विरोध नहीं कर सकता। मुनिवर भी सर्वज्ञ-वीतराग भगवान का स्तोत्र बनकर अंतर में अपनी वीतरागता का मंथन करते हैं। इन्द्र तो स्तुति करते ही हैं और मुनिवर भी भगवान की स्तुति करते हैं। अहो! भगवान को सर्वज्ञता प्रगट हुई....धन्य वह मंगल दिन....ऐसा केवलज्ञान प्राप्त करने के लिए, संसार का तीव्र राग छेदने के लिए सर्वज्ञ वीतरागपना क्या है, उसे पहिचानकर, 'मुझे भी ऐसा सर्वज्ञपना और वीतरागता ही आदरणीय है, अन्य कोई रागादिभाव आदरणीय नहीं हैं - ऐसी श्रद्धा और ज्ञान कराने से कर्मों का तो चूरा हो जाता है। रागरहित स्वभाव का भान होने पर भी अस्थिरता का जो अल्पराग रहता है, उससे उच्च पुण्यबंध हो जाता है, किन्तु धर्मी को उस राग की भावना नहीं है। जहाँ बहुत सा अनाज पैदा हो, वहाँ साथ में घास भी होता ही है, लेकिन किसान की दृष्टि अनाज पर होती है, उसीप्रकार साधक भूमिका में राग के कारण पुण्य हो जाता है, किन्तु धर्मी की दृष्टि रागरहित स्वभाव पर होती है।

यहाँ आचार्यदेव श्री शांतिनाथ भगवान का स्तवन करते हैं। समस्त आत्माओं का स्वभाव शांतिनाथ भगवान जैसा है। शक्तिरूप से अंतर में परमात्मापना भरा है, उसे पहिचानकर जिन्होंने प्रगट कर लिया, वे त्रिलोकीनाथ भगवान हुए हैं। ऐसी पहिचान करना, सो भगवान की सच्ची स्तुति है।

हे नाथ ! आपको केवलज्ञान प्रगट हुआ है, वही सार है। आपके केवलज्ञान की प्रभा निरंतर उदयमान है। सूर्य की प्रभा तो सबेरे उदित होती है और शाम को अस्त हो जाती है, किन्तु आपके केवलज्ञान की प्रभा तो उदित हुई सो हुई...वह कभी अस्त को प्राप्त नहीं होती। हे प्रभो ! आपकी ऐसी त्रिकाली ज्ञान की महिमा के सन्मुख चार ज्ञान की महिमा भी इसे भासित नहीं होती, तब फिर रागादि का आदर तो होगा ही कहाँ से ? केवलज्ञान में एक समय में तीन काल-तीन लोक ज्ञात होते हैं। इस आत्मा के लिए सार में सार वस्तु हो तो केवलज्ञान है। हे नाथ ! मुझे सम्यक् मति-

श्रुतज्ञान है। किन्तु मेरी दृष्टि तो केवलज्ञान पर है। भीतर पूर्ण स्वभावशक्ति भरी है, उसका भान है और उस शक्ति में लीन होकर पूर्ण केवलज्ञान प्रगट करने की भावना है...यह अल्प ज्ञान वर्त रहा है, उसकी महिमा नहीं है। इसप्रकार स्तुति करते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि श्री शांतिनाथ भगवान हमारी रक्षा करो। भक्ति में तो निमित्त से कहा जाता है, किन्तु उसका निश्चय भाव ऐसा है कि मैं शांति स्वरूप आत्मा के आश्रय से रत्नत्रय द्वारा वर्तमान विकार अवस्था में से छूटकर पूर्ण परमात्मपद प्रगट कर लूँ।

हे वीतराग परमात्मा ! आत्मा निर्मल आनन्दघन है – ऐसी दशा मुझे प्रगट हो, उसकी मैं भावना करता हूँ....और आपको वैसी पूर्णानंद दशा प्रगट हो गई है, इसलिए आपका गुणगान करता हूँ...मुझे जो अच्छा लगा है, उसके मैं गीत गाता हूँ। मेरी जो वर्तमान साधकदशा है, उससे मैं च्युत न होऊँ और स्वभावदृष्टि के बल से अप्रतिहतरूप से आगे बढ़कर पूर्ण होऊँ – ऐसी भावना से और महान विनय से स्तुतिकार कहते हैं कि हे शांतिनाथ भगवान ! आप हमारी रक्षा कीजिए। (यह निमित्त के-उपचार के कथन हैं।)

6. भगवान का भक्त या जड़ का ?

भगवान के निकट जो जीव शरीर का रक्षण करने की भावना करता है, उसे तो अशुभभाव है। कोई कहे कि शरीर अच्छा हो तो संयम का पालन हो सकता है, तो उसकी बात मिथ्या है। शरीर तो हड्डी-मांस का पिंड है, क्या उसके आधार से संयम रहता होगा ? संयम तो आत्मा की निर्मलदशा है। आत्मा के पवित्र गुणों का भान करके उसके आश्रित रहने से इन्द्रियदमन का भाव प्रगट होता है, उसका नाम संयम है। वह संयमभाव आत्मा के आश्रित है, शरीर के आश्रित नहीं है। शरीर में रोगी-निरोगी अवस्था का होना, वह शरीर के आधीन है और भीतर आकुलता या शांति चाहता है, वह आत्मा के आधीन है।

प्रश्न – आत्मा तो अनंत बल का स्वामी है – ऐसा आप कहते हैं न ?

उत्तर – हाँ, आत्मा अनंत बल का स्वामी है, यह बात सच है, किन्तु वह बल अपने में या पर में ? आत्मा की शक्ति पर में कुछ नहीं कर सकती। जड़ देह-मन-वाणी आदि पर आत्मा का पुरुषार्थ कार्यकारी हो या प्रभाव डाले – ऐसी मान्यता, वह महान मूर्खता है, जड़-चेतन के भिन्नत्व

का उसे भान नहीं है। अपने में अनंतज्ञान, सुख आदि प्रगट करने की अनंत शक्ति आत्मा में है, किन्तु शरीरादि में फेरफार करने की आत्मा में किंचित् शक्ति नहीं है। भगवान के निकट अपने अनंत केवलज्ञान की भावना करने के बदले शरीर की और पुण्य की भावना करे तो सच्ची भावना करना ही नहीं आया। जिसप्रकार चक्रवर्ती राजा प्रसन्न होकर कहे कि – 'मांग...मांग, जो मांगे, वह दे सकता हूँ। उस समय कोई मूर्ख ऐसा कहे कि 'झाडू लेकर यह कूड़ा-कचरा साफ कर दो' तो उसे मांगना ही नहीं आया। उसीप्रकार चैतन्य चक्रवर्ती भगवान में केवलज्ञान देने की शक्ति है, उसके बदले भगवान के निकट जाकर कोई ऐसी भावना करे कि हे भगवान ! शरीर को अच्छा रखना और पुण्य देना...' तो मूर्ख है, जिसे जड़ की एवं राग की भावना है, वह भगवन का भक्त नहीं है...वीतराग का दास नहीं है, किन्तु जड़ का दास है।

☆ ☆ ☆

7. दुन्दुभी के वर्णन द्वारा भगवान के दिव्य ज्ञान की स्तुति

जिसे अपनी पूर्णता की भावना है, वह सर्वज्ञ परमात्मा की पूर्णता को पहिचानकर उनकी स्तुति करता है। यहाँ श्री पद्मनन्दि आचार्य श्री शांतिनाथ भगवान की स्तुति करते हैं, उसमें प्रथम श्लोक में तीन छत्रों का वर्णन करके भगवान के केवलज्ञान की स्तुति की। अब दूसरे श्लोक में देवदुंदुभी का वर्णन करके भगवान के केवलज्ञान की स्तुति करते हैं –

'देवः सर्वविदेष एव परमो न्यायस्त्रिलोकपतिः
संत्यस्यैव समस्ततत्त्वविषया वाचः सतां सम्मताः।।'

एतद्घोषतीव यस्य बिबुधैरास्फालितो दुन्दुभिः।
सोऽस्मान् पातु निरंजनो जिनपतिः श्री शांतिनाथः सदा।।2।।

हे नाथ ! आपके समवसरण में देवों द्वारा बजाई जानेवाली दुन्दुभि (दिव्य नगारा) का नाद मानो जगत में इसी बात को प्रगट रूप से कह रहा है कि – 'समस्त पदार्थों को जाननेवाले, उत्कृष्ट एवं त्रिलोकपति श्री शांतिनाथ भगवान ही हैं, और समस्त तत्त्वों का वर्णन करनेवाले उन्हें के वचन सज्जनों को मान्य हैं, इसके अतिरिक्त दूसरा कोई समस्त पदार्थों का ज्ञाता, उत्कृष्ट या त्रिलोकपति नहीं है और न उसके वचन संमत हैं।' ऐसे निरंजन श्री शांतिनाथ भगवान हमारी रक्षा करो।

8. नगारे के नाद में भगवान की सर्वज्ञता की घोषणा

हे प्रभु ! सत्पुरुषों को एक तेरी ही शरण है...प्रभु ! तू ही सर्वज्ञ वीतराग है...देखो, भगवान के समवसरण में देवदुदुंभी बजती है, उसका शास्त्र में उल्लेख है और महाविदेहक्षेत्र में ऐसा हो रहा है...श्री सीमंधर भगवान की धर्मसभा में देवदुदुंभी नगारे बज रहे हैं। भाई ! यह प्रत्यक्ष आदि प्रमाण से सिद्ध है। तुच्छबुद्धिवाले के छोटे से गज में यह बात नहीं जम सकती, उसका कल्पना का गज (माप) तो झूठा हो सकता है....किन्तु यह प्रमाणज्ञान का गज मिथ्या नहीं हो सकता। हे भगवान! आपके दुदुंभी के नाद में हमें तो ऐसा ही सुनाई देता है कि अरे मनुष्य और देव ! जगत के जीवो ! तुम्हें शरणभूत हो तो यह श्री शांतिनाथ भगवान ही हैं, यहाँ आओ...और इन्हीं के वचन सुनो...क्योंकि तीन लोक का ज्ञान हो तो इन्हीं को है। स्तुतिकार कहते हैं कि हे नाथ! यह नगारों का नाद आपकी सर्वज्ञता की ही घोषणा कर रहा है। हे जीवो ! तुम यहाँ आओ....यहाँ आओ....इन भगवान की शरण लो। जिन्हें तीन काल तीन लोक का ज्ञान प्रकट है, ऐसे इन भगवान के वचन ही सम्मत करो। तीन लोक के नाथ तथा परम देवाधिदेव हों तो यह सीमंधर भगवान हैं...शांतिनाथ भगवान हैं। यदि तुम्हें सर्वज्ञ-वीतराग पद चाहिए हो तो यहाँ आओ....यहाँ आओ....इन भगवान का सेवन करो....भगवान के वचनों में कहे हुए आत्मा की श्रद्धा करो।

लोक में जिस प्रकार लक्ष्मी आदि की रुचिवाले लोग राजा आदि के निकट जाकर उनकी प्रशंसा करते हैं, उसीप्रकार यहाँ लोकोत्तर मार्ग में प्रभुता के भानवाले भक्त प्रभु की स्तुति-प्रशंसा करते हैं...उसमें अपनी प्रभुता की निःशंक भावना अपनी प्रभुता प्रगट होने का कारण है।

9. आओ रे....आओ भगवान से भेटने !

आत्मा ज्ञानस्वभाव है...तीन काल तीन लोक को जानने का सामर्थ्य प्रत्येक आत्मा में है.... उसका भान करके जिन्हें वैसी पूर्ण शक्ति प्रगट हो गई है, वे सर्वज्ञदेव हैं। उनके राग नहीं है...ज्ञान की कोई अपूर्णता नहीं है, उनके स्त्री नहीं है, वस्त्र नहीं हैं, शस्त्र नहीं हैं। उनकी धर्मसभा में दिव्य नगारा बजता है, वह कहता है कि '.....जिसे आत्मा चाहिए हो...जिसे अंशाति टालकर शांतिकुंड में स्नान करना हो...आत्मा के अनंत सुख सागर में निमग्न होना हो...वे जीव यहाँ भगवान की धर्म सभा में आओ और उनकी वाणी को समझो....जिन्हें चैतन्य भगवान से भेंट करना हो, वे इन

भगवान के निकट आओ रे आओ ! धर्म सभा में, आत्मा को पहिचान कर अनंतकालीन क्षुधा को नष्ट करना हो और स्वरूपसंयम प्राप्त करना हो....दु:खों को दूर करके शांति चाहिए हो तो।' इसप्रकार भगवान का दुदुंभि नगारा घोषणा करता है...और भगवान के समवशरण में अनेक संत-मुनि, जंघाचरणादि ऋद्धिधारी मुनिओं के समूह, देव और विद्याधर आकाश मार्ग से आ-आकर दर्शन करते हैं। वन में चिंघाड़ते हुए सिंह आदि तिर्यंच भी भगवान के निकट आकर शांत होकर बैठ जाते हैं। प्रथम यह जानना चाहिए कि सर्वज्ञ भगवान कैसे होते हैं। जिसके हाथ में कोई शस्त्र हो, उसे किसी के प्रति बैरबुद्धि है, इसलिए वह वीतराग नहीं है; साथ में स्त्री को रखा हो, वह ब्रह्मचारी भी नहीं हुआ है तो वह भगवान कहाँ से हो ? जो हाथ में माला लिये हो, वह किसी की स्तुति करता है, इसलिए वह पूर्ण नहीं है, अपूर्ण है। जो स्वयं रागी और अपूर्ण हो, वह दूसरों को पूर्णता का कारण कैसे हो सकता है ? इसलिए वह देव नहीं हो सकता। और जो वस्त्र रखता है, उसे शरीर का राग दूर नहीं हुआ है, इसलिए वह भी देव नहीं होता।

जिन्हें आत्मा के पूर्णस्वरूप को पहिचान कर...आत्मा के वीतरागी स्वरूप की लगन लगाना हो, वे इन सर्वज्ञ-वीतराग भगवान को पहिचानो। 'नगारा' कहता है कि तुम्हें आत्मा की लगन लगाना हो तो आओ....सीमन्धरनाथ के निकट ! भगवान के केवलज्ञान की प्रतीति करने वाले को वास्तव में अपने पूर्ण ज्ञानस्वभाव की प्रतीति होती है।

10. भगवान की पहिचान और सच्ची शरण

यहाँ स्तुति में आचार्यदेव ने यह बात सिद्ध की है कि आत्मा में केवलज्ञान सामर्थ्य है और तीन काल-तीन लोक को जानने की शक्ति प्रगट होती है, ऐसा सामर्थ्य प्रत्येक आत्मा में है। जिन्हें ऐसा सामर्थ्य प्रगट हुआ हो, ऐसे भगवान की देह पर वस्त्रादि तीन काल-तीन लोक में नहीं होते। अहो ! ऐसी पूर्ण परमात्मदशा के साधक संत-मुनियों के वस्त्र नहीं होते; वस्त्रसहित तो मुनिदशा भी तीन काल में नहीं होती, तब फिर पूर्ण दशा को प्राप्त तीन लोक के नाथ ऐसे परमात्मा को तो वस्त्रादि कहाँ से होंगे ? यह किसी फिरके के की बात नहीं है, किन्तु वस्तु के स्वरूप की बात है। घर में हजारों स्त्रियों के साथ रहता हो और कहे कि मुझे स्त्री आदि का किंचित् राग नहीं है तो यह कैसे हो सकता है ? राग दूर हो गया हो तो राग के निमित्त भी दूर हो ही जाते हैं। जिस प्रकार बादाम

में भीतर का लाल छिलका निकल जाये तो ऊपर की छाल भी निकली ही होती है। उसीप्रकार निर्मल आनंदघन आत्मस्वभाव में लीन होकर जिसने भीतर से रागरूपी लाली को निकाल दिया है, उसे बाह्य में स्त्री, वस्त्र आदि राग के निमित्त भी छूट ही जाते हैं। अरिहंतदेव और निर्ग्रंथ गुरु का स्वरूप क्या है, उसे जाने बिना अनेक लोग कहते हैं कि 'अरिहंतदेव और निर्ग्रन्थगुरु की शरण भव-भव में प्राप्त हो।' किन्तु भाई ! अरिहंतदेव और निर्ग्रन्थ गुरु कैसे होते हैं, उसके भान बिना तू किसकी शरण लेगा ? पहले पहिचान तो कर, पहिचान किये बिना तुझे सच्ची शरण प्राप्त नहीं होगी। रागरहित भगवान को जाने बिना तेरा अपना आत्मा रागरहित कैसा है, वह भी पहिचान में नहीं आयेगा और उसे पहिचाने बिना आत्मा को सच्ची शरण प्राप्त नहीं होगी। अरिहंतदेव तो व्यवहारशरण है, परमार्थशरण तो अपना आत्मा ही है। अभी जिसे अरिहंत का ही भान नहीं है, वह अपने आत्मा की शरण कैसे लेगा ? जिसे बाह्य में रागादि के साधन वर्त रहे हों, उसके भीतर का राग दूर नहीं हुआ है और जो रागी हैं, वे सच्चे देव नहीं हैं। ऐसे रागी जीवों को जो देवरूप से स्वीकार करते हैं, उन्हें अरिहंत प्रभु का आदर नहीं है। जो स्वयं राग में वर्त रहे हैं, वे तो स्वयं ही अशरण हैं, वे दूसरों को शरणभूत कहाँ से होंगे ? इसलिए स्तुतिकार ने कहा है कि हे नाथ ! देवाधिदेव सर्वज्ञ तो आप ही हैं, संतों को आपकी ही शरण है। अहो ! इस समय महाविदेहक्षेत्र में तो गणधर और इन्द्र, संत और चक्रवर्ती सीमंधर प्रभु का आदर करते हैं...यहाँ तो रंक-पुण्य के भिखारी...और पुरुषार्थरहित क्षुद्र हृदय वाले जीव भगवान का क्या आदर करेंगे ? यहाँ तो भगवान का विरह है...तथापि जो जीव भाव करे, उसके तो अपने में ही भगवान है न ! अपने भाव का लाभ अपने को है।

11. 'धर्मबुद्धि का महोत्सव'...कल्याण का सुअवसर'.....'आत्मा का शुक्रवार'.... 'भगवान की भेंट.....'

कोई श्रोताजन कहते हैं कि हे नाथ ! हमें तो आज यहीं सुवर्णपुरी बन गई है....यहीं हमें महाविदेह जैसा बन गया है।

श्रीगुरु कहते हैं कि हे भाई ! यह तो अभी प्रारम्भ है, अभी 'कलश' चढ़ना तो बाकी है। इसमें दो बातें आ जाती हैं - एक तो, श्री जिनमंदिर पर कलश चढ़ना बाकी है वह और इसके

अतिरिक्त अभी कुछ-कुछ नवीन (धर्म वृद्धि) होगा....जिनके भाग्य होंगे, वे देखेंगे...जो हो रहा है, वह इस समय देख रहे हैं। अहो ! ऐसे पंचकल्याणक के पवित्र उत्सवों के लिए तो देव भी लालायित रहते हैं...इन्द्र भी भगवान की प्रार्थना करते हैं....इस समय इस भरतक्षेत्र की क्या बात की जाये ? साधारण प्राणी को यह बात नहीं जमती, किन्तु प्रतीति करके मानना....ज्ञानी के गज अलग ही होते हैं, अज्ञानी के गज से माप नहीं आता। और इस समय देश-काल अयोग्य है, तथा विषय-कषाय में डूबे हुए जीवों की वृत्ति भी तुच्छ है, उन्हें भगवान की कल्पना भी क्या आयेगी ? जैसे पिता ने 50 हाथ एक कपड़े का थान लाकर रखा हो, छोटा लड़का अपने हाथ से उसे मापकर कहे कि 'यह तो 75 हाथ का है, पिताजी भूल गये होंगे।' परन्तु पिता उससे कहता है कि भाई ! हमारे लेन-देन में तेरे हाथ का माप काम नहीं आ सकता, उसीप्रकार ज्ञानी की अपूर्व बात अज्ञानी की कल्पना में नहीं आती, किन्तु उससे कहीं ज्ञानी की बात मिथ्या नहीं है। वस्तु का स्वरूप समझे तो पूरी बात अंतर में जम जाये....भाई ! नासमझी से कहीं अंत नहीं आ सकता। अरे, अनंतकाल में यह महँगा मनुष्यभव प्राप्त हुआ और ऐसे देव गुरु से भेंट हुई, सत् समझ कर कल्याण करने का सुअवसर आया है, देवों को भी दुर्लभ ऐसा यह सुअवसर है। ऐसे अवसर पर भक्ति करने के लिए देव भी आते हैं। आज जिसे आत्मा का दरिद्र दूर करना हो, उसका मिथ्यात्वरूप दु:ख-दरिद्र दूर हो सकता है। भगवान स्वयं साक्षात् नहीं आते, किन्तु उन त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर भगवान श्री सीमंधर भगवान की प्रतिष्ठा हो रही है, उसमें ऐसा सुअवसर आया है कि जो भगवान की पहिचान करे, उसे भव न रहे....जन्म-मरण रह ही नहीं सकते....भगवान को पहिचान कर, उनके गीत गाये, उसे भव में परिभ्रमण करने की शंका न रहे और भगवान की प्रतिष्ठा के दिन दोज है। जिसप्रकार चंद्र की दोज उदित हुई, वह बढ़कर पूर्णिमा

होती ही है...उसीप्रकार इन भगवान को पहिचान कर उनकी अपने आत्मा में प्रतिष्ठ करे अर्थात् मैं भी भगवान जैसा ही हूँ – ऐसा स्वभाव का भान करे, उसके आत्मा में सम्यग्ज्ञानरूपी दोज का चन्द्र उदित हुआ, वह बढ़कर पूर्णिमा केवलज्ञान हुए बिना नहीं रहेगा। मंदिर के ऊपर के भाग में श्री नेमिनाथ स्वामी की प्रतिष्ठा होगी, उसमें भी प्रकृति का कैसा योग है। देखो, गतवर्ष, नेमिनाथ भगवान की कल्याणकभूमि श्री गिरनार पर्वत पर समश्रेणी की टोंक पर बराबर फाल्गुन शुक्ला दोज के दिन थे, वहाँ अपूर्व भक्ति का महान उल्लास था...और यहाँ इस वर्ष बराबर फाल्गुन शुक्ला दोज के दिन प्रातःकाल श्री नेमिनाथ भगवान की प्रतिष्ठा होगी....सम श्रेणी की टोंक पर भगवान की भक्ति और शुद्धात्मभावना की रटन लगा कर जब नीचे उतरे उस समय लोग उत्साहित होकर कहते थे कि 'हम तो मानो मोक्ष में हो आयें...ऐसा लग रहा है।' वहाँ जो दिन था, उसी दिन यहाँ भगवान की प्रतिष्ठा होगी....मांगलिक कार्य में सारा मेल प्राकृतिक क्रमानुसार जम जाता है।

12. जिनेन्द्रप्रतिष्ठा और प्रतिष्ठाकार का वेदन

श्री जिनेन्द्र भगवान की प्रतिष्ठा का ऐसा सुयोग महा भाग्यवंत को प्राप्त होता है। शास्त्र में प्रतिष्ठा करानेवाले गृहस्थ का वर्णन आता है। वह गृहस्थ श्रीगुरु के निकट जाकर विनयपूर्वक कहता है कि – हे स्वामी ! मेरे पास आई हुई यह लक्ष्मी कुलटा स्त्री के समान अनित्य है, यह लक्ष्मी कब चली जायेगी, इसका विश्वास नहीं है, इसलिए मैं श्री वीतराग भगवान की प्रतिष्ठा कराके इसका सदुपयोग करना चाहता हूँ, इसलिए मुझे आज्ञा दीजिए। इसप्रकार आज्ञा लेकर वह भगवान की प्रतिष्ठा कराता है। श्रीगुरु उससे कहते हैं कि – तेरा जीवन धन्य है। भगवान की प्रतिष्ठा होने पर भक्त कहते हैं कि अहो ! यह वीतराग देव पधारे हैं....आज हमारी भगवान से भेंट हुई...जिसे अंतर में पूर्णानंद परमात्मस्वभाव का भान हुआ हो और बाह्य में निमित्तरूप से साक्षात् भगवान को न देखे, उस समय वह प्रतिमा में प्रभु की प्रतिष्ठा करता है। हे नाथ ! आपके वियोग में आपकी प्रतिष्ठा करके आपको अपने अंतर में विराजमान कर रहे हैं। भक्त भगवान के निकट कहते हैं कि हे नाथ –

‘ भरतक्षेत्र मानवपणो रे....
लाध्या दुःसमकाल....
जिन-पूरवधर विरहथी रे,
दुलहो साधन चालो रे....
चंद्रानन जिन...

भरतक्षेत्र के भक्त कहते हैं कि हे नाथ ! इस भरतक्षेत्र में आपका विरह पड़ा है। अहो ! विदेहक्षेत्र में विराजमान चैतन्यमूर्ति प्रभु, जिनके चरणों की सौ-सौ इन्द्र सेवा कर रहे हैं, ऐसे नाथ का हमें यहाँ विरह पड़ा है....ऐसा मनुष्यभव प्राप्त हुआ....किन्तु सर्वोत्तम साधन का वियोग पड़ा....हे प्रभो ! आपके ऐसे विरह में हमारा काल बीत रहा है....हे सीमंधरनाथ....आपका साक्षात् स्वामी का विरह है, उसे यहाँ प्रतिष्ठा करके दूर करेंगे। हे नाथ ! जहाँ आप साक्षात् विराज रहे हैं, वहाँ हमारा अवतार नहीं है...हम आप से दूर पड़े हैं, फिर भी हे स्वामी ! हम अपने अंतर में आपकी प्रतिष्ठा करके अपना कार्य पूर्ण करेंगे।

अहो ! जहाँ भगवान विराजमान रहे हैं, यहाँ तो धर्मतीर्थ थोकधारावाही-भरपूर चल रहा है, गणधर, संत, इन्द्र, चक्रवर्ती आदि महान पुरुष भगवान के धर्म का भक्तिपूर्वक सेवन कर रहे हैं। यहाँ जो धर्म कहा जाता है, वह तीन काल तीन लोक में भी बदल नहीं सकता, जिसके लिए इन्द्र, गणधर और तीर्थंकर साक्षी हैं। यहाँ जैसा आत्मस्वभाव कह रहे हैं, वैसा यदि एक बार भी पात्रता से समझ ले तो ऐसा अपूर्व ज्ञान प्रगट हो कि बस ! भव का अंत आ जाये। अहो! ऐसी परम सत्य बात, आत्मकल्याण की अपूर्व बात ! पामर जीव उसका विरोध कर रहे हैं, धर्म के नाम पर खलबली मच रही है....जहाँ देखो वहाँ बहुत ही फेरफार है, धर्म का यथार्थ मार्ग भूलकर कोई कुछ मान रहा है-कोई कुछ.....जिसे जैसा रुचे, वैसा मना रहे हैं...हे नाथ ! तीर्थंकर के विरह से भरतक्षेत्र में पृथक्-पृथक् अभिप्राय हो गये हैं....किन्तु हे प्रभु ! आपके प्रताप से हमारा उद्धार हो गया...पार आ गया...आपके प्रताप से हमारा सब निपटारा हो गया और समाधान आ गये....किन्तु जगत कैसे समझे ? कोई महा भाग्यवंत जीव समझ कर कल्याण कर लेते हैं। हे नाथ ! आपकी दिव्यध्वनि का महान स्रोत छूटता था, वहाँ तो अनेक संत केवलज्ञान को प्राप्त होते थे....उसके बदले यहाँ के प्राणियों में तो अल्प पुण्य और अल्प पुरुषार्थ! तथापि भले ही अल्प हो परन्तु केवलज्ञान को पहिचानकर उसकी श्रद्धा तो है न ! इसलिए वह पुरुषार्थ अल्प होने पर भी केवलज्ञान के साथ संधिवाला है, इसलिए बीच में भंग पड़े बिना पूर्ण केवलज्ञान की प्राप्ति होगी ही! वह तीन काल तीन लोक में नहीं बदल सकता...हे नाथ ! पूर्णता का संदेह नहीं है...किन्तु अपूर्णता में-साधकदशा में-अंतर पड़ा है...वह अंतर इस समय तो आपकी प्रतिष्ठा करके दूर करते हैं....भावना करते हैं।

13. प्रभु की दिव्यध्वनि की गर्जना

हे सीमंधरनाथ! महाविदेह में जहाँ आपकी दिव्यध्वनि का स्रोत बहता है, वहाँ गणधर झेलते हैं और इन्द्र भी आपकी महिमा प्रगट कर सेवन करते हैं, उससे पाखण्डियों का पाखण्ड चूर-चूर हो जाता है....जैसे सिंह जब जीवित हो, तब भेड़िये उसके समक्ष कैसे खड़े रह सकते हैं ? जीवित सिंह जिस मार्ग से निकल जाये, उस मार्ग के घास को भी हिरन नहीं खाते। जीवित सिंह के सामने तो बकरा नहीं रह सकता, किन्तु मरे हुए सिंह के चमड़े का बनाया हुआ नगारा पड़ा हो तो उस नगारे के निकट बकरे के चमड़े का बनाया हुआ नगारा नहीं रह सकता.... सिंह के चमड़े वाले

नगारे पर जहाँ डांडी पड़ी कि उसकी आवाज से बकरे के चमड़े वाला नगारा फट जाता है....उसी प्रकार हे नाथ ! हे जिनेन्द्र ! आपके प्रताप के समक्ष कोई नहीं टिक सकता... जहाँ आपकी दिव्यध्वनि का नाद छूटा कि वहाँ अज्ञानियों का अज्ञान टूट जाता है....पाखण्डियों का पाखण्ड चूर-चूर हो जाता है...कुतर्कवादियों का कुतर्क नष्ट हो जाता है। प्रभु! एक आप ही इस जगत में ऐसे हैं...आपकी शरण बिना अन्य किसी भी उपाय से उद्धार नहीं हो सकता। आपके समवशरण में दिव्य दुदुंभी घोषणा कर रही है कि हे जीवो ! अपने समस्त प्रमाद कार्य छोड़कर यहाँ आओ और मोक्ष के साथी, ऐसे इन भगवान का सेवन करो....उनकी दिव्यध्वनि श्रवण करके आत्मा को पहिचानो....समझो....।

चैतन्य की महिमा और दुर्लभता

अहो, आत्मा के शुद्धस्वभाव की अत्यंत महिमावाली बात जीवों ने यथार्थरूप से कभी नहीं सुनी। आजकल चैतन्यतत्त्व की महिमा की सच्ची बात सुनने को मिलना अति दुर्लभ हो गया है। जो जीव जिज्ञासु तथा योग्य होकर आत्मस्वभाव की बात सुने उसका कल्याण हो सकता है।

- प्रवचन से

णमो अरिहंताणं

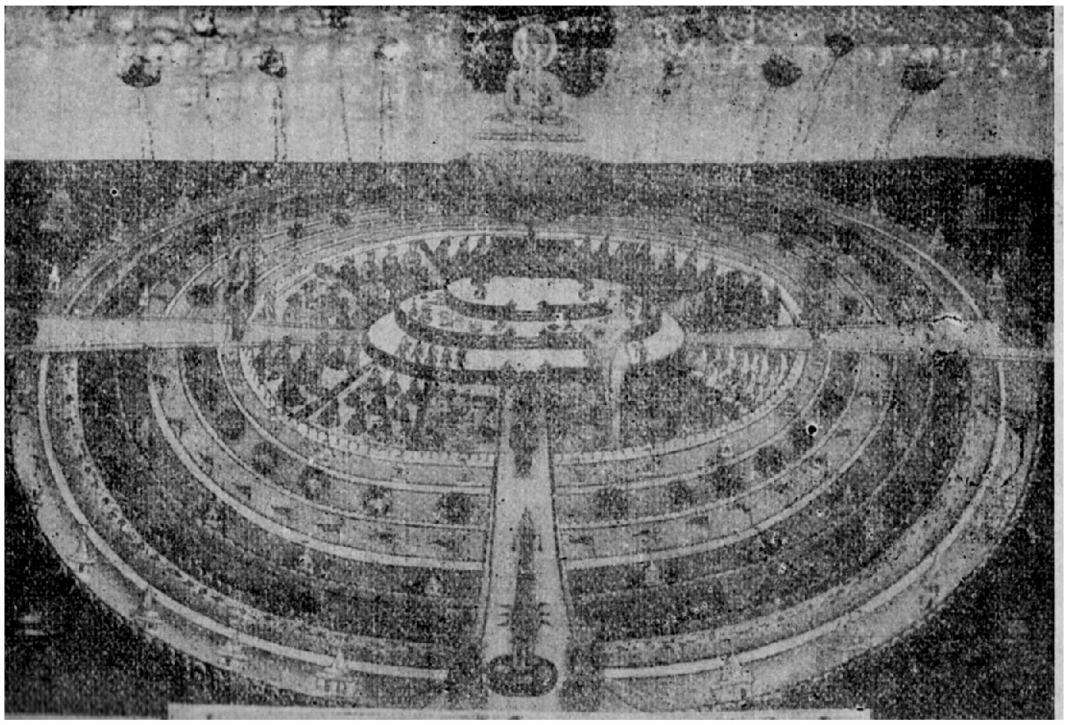

'अर्हंत सौ कर्मो तणोकरी नाश अे ज विधि वडे,
उपदेश पण अेम ज करी, निवृत थया; नमुं तेमने।'

श्री प्रवचनसार की 80-81वीं गाथा में मोह का सर्वथा नाश करके पूर्ण शुद्धात्मा की प्राप्ति के उपाय का वर्णन करके तत्पश्चात् इस 82वीं गाथा में समस्त तीर्थंकरों को साक्षीरूप रखकर श्री आचार्यदेव कहते हैं कि जिस उपाय का यहाँ वर्णन है, वही उपाय समस्त तीर्थंकरों ने स्वयं किया और जगत के भव्य जीवों को भी उन्होंने ऐसा ही उपदेश दिया....उनको नमस्कार हो।

अरिहंत कहते हैं कि हम अपने द्रव्यस्वभाव का आश्रय करके केवलज्ञान को प्राप्त हुए हैं और हे जगत के जीवो ! तुम भी इसी प्रकार अपने स्वभाव का ही आश्रय करो। स्वभावाश्रित मुक्ति

का मार्ग है; इसलिए पुरुषार्थ द्वारा स्वभाव को जानकर उसी का आश्रय करो....यहाँ आचार्यदेव को स्वाश्रित मोक्षमार्ग की महिमा आने से कहते हैं कि अहो ! उन अरहंतों को नमस्कार हो...उनके बताये हुए मार्ग को नमस्कार हो।

श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं कि 'णमो तेसिं' उन सीमंधरादि अरिहंतों को नमस्कार हो। अहो ! हे नाथ ! आपने अपने आत्मा में तो स्वभाव का संपूर्ण आश्रय प्रगट करके पराश्रय भावों को चकनाचूकर कर दिया और अन्य जीवों के लिए आपकी वाणी में भी पराश्रय का चूरा ही है। आपका दिव्य उपदेश जीवों को पराश्रय से छुड़ाता है। आचार्यदेव को अधिकांश स्वाश्रयभाव तो प्रगट हो गया है और पूर्ण स्वाश्रयभाव प्रगट करने की तैयारी है, इसलिए स्वाश्रयी मुक्तिमार्ग का प्रमोद आ जाने से कहते हैं कि अहो ! जगत के जीवों को स्वाश्रय का उपदेश देनेवाले हे अरिहंत ! आपको नमस्कार हो। नमो....नमो ! हे जिनभगवंत !....आपको नमस्कार करता हूँ।

अज्ञानभाव से अनंत प्रकार के पराश्रयभाव में अज्ञानी जीव परिभ्रमण करते हैं। अहो ! जगत में इतने-इतने पराश्रयभाव हैं, उन सबसे छुड़ाकर आत्मा को एक अपने स्वभाव के ही आश्रय में लाकर रख दिया है। हे तीर्थंकर ! आप स्वयं भी स्वभाव की श्रद्धा और स्थिरता करके ही मुक्त हुए हैं और अपनी वाणी में जगत के मुमुक्षुओं को भी इसीप्रकार का उपदेश किया है। अहो अरिहंत ! आपको नमस्कार...आपके स्वाश्रित मार्ग को नमस्कार। मेरा आत्मा स्वाश्रय की साक्षी जितना अपने अप्रतिहत मार्ग में चला आ रहा है।

हे नाथ, मुझे स्वाश्रय का उल्लास आता है। धन्य है प्रभु आपके कथन को ! आपको मैं नमस्कार करता हूँ। मेरा आत्मा स्वाश्रय में नमस्कार करता है, आपकी भांति में भी स्वाश्रय पूर्वक अर्हंतदशा प्रगट करने के लिए आपके मार्ग पर चला आ रहा हूँ। अहो ! ऐसे नमस्कार कौन करता है ? ऐसा उल्लास किसे उछलता है ? जिसने अपने स्वभाव की श्रद्धा से स्वाश्रय की ओर उन्मुखता की है, वह स्वाश्रय के उल्लास से अरिहंतों को नमस्कार करता है।

'अहो अरिहंत ! मैं आपके पदचिह्नों पर चला आ रहा हूँ। सर्व अरंहतों को मेरा नमस्कार है। समस्त अरहंतों ने इस एक ही मार्ग से पूर्णता प्राप्त की है और उन्होंने उपदेश में भी ऐसा ही कहा है' - ऐसा कहकर पश्चात् उन सर्व अरहंतों को आचार्यदेव ने नमस्कार किया है। इसमें आचार्यदेव

को उच्च झंकार है। 'उपदेश पण अेम ज कार्यो' – ऐसा कहकर आचार्यदेव उपदेश वाले अरिहंतों की अर्थात् तीर्थंकरों की बात लेना चाहते हैं। तीर्थंकरों को केवलज्ञान प्रगट होने के पश्चात् नियम से दिव्यध्वनि खिरती है और उस ध्वनि के द्वारा ऐसा ही स्वाश्रय के मार्ग का उपदेश जगत के मुमुक्षुओं को देते हैं। उसे सुनकर स्वाश्रय करनेवाले जीव भी होते ही हैं। इसप्रकार संधि द्वारा स्वाश्रय मार्ग का अच्छिन्न प्रवाह बतलाया है।

देखो, यहाँ कुन्दकुन्द प्रभु मोक्ष का उपाय बतलाते हैं और उसमें सर्व तीर्थंकरों की साक्षी देते हैं। अपना आत्मा ज्ञान-दर्शन-आनंदस्वरूप है, उसे लक्ष में लेकर उसी के आश्रय से शुद्धोपयोग प्रगट करके, भेद और व्यवहार का क्षय करके भगवान अरहंतों ने केवलज्ञान प्रगट किया है। त्रिकाल मोह का क्षय करने की यह एक ही विधि है। तीर्थंकरों ने स्वयं यही विधि की है और यही कही है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई विधि मोक्ष के लिए है ही नहीं।

अहो भगवंत ! आपको नमस्कार हो। आपका पवित्र उपदेश हमें अंतर में जमा है और हमारे अंतर में स्वाश्रय का आह्लाद उछल रहा है। प्रभो ! हम दूसरा तो क्या कह सकते हैं ? नाथ ! 'नमो भगवदभ्य:' भगवंतों को नमस्कार हो। इसप्रकार अरहंतों का उपदेश समझाने वाले जीव स्वाश्रय के उल्लास से भगवान को नमस्कार करते हैं।

किसी पुण्यभाव से या निमित्तों के अवलम्बन से सम्यग्दर्शनर नहीं होता, किन्तु अपने द्रव्य-गुण-पर्याय से अभेदस्वभाव के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है। ऐसा पवित्र उपदेश करके हमें स्वाश्रय का मार्ग दर्शाया, उसके लिए हे नाथ ! आपको हमारा नमस्कार है। वर्तमान शुभ विकल्प है किन्तु उस ओर उन्मुख न होकर स्वभाव की महिमा की ओर हम ढल रहे हैं। स्वभाव के आश्रय से धर्म की वृद्धि ही है। जो दशा आपने प्रगट की, उसे नमस्कार करके हम रागरहित चैतन्यस्वभाव का ही आश्रय और विनय करते हैं; विकल्प का आदर या आश्रय नहीं करते। हे जिनेश ! आपका उपदेश सुनकर हमें स्वभाव और परभाव का भेदज्ञान हुआ – हमें निश्चय-स्वाश्रय वीतरागस्वभाव की प्राप्ति हुई, इसलिए हम आपको नमस्कार करते हैं.....आपके दर्शाये हुए मार्ग पर आते हैं।

स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान और स्थिरता – ऐसा एक ही प्रकार मोक्ष का मार्ग है। इसीप्रकार से तीर्थंकरों ने सर्व कर्मों का क्षय करके शुद्ध आत्मस्वरूप का अनुभव किया है। ऐसे तीर्थंकर सर्वज्ञ

और वीतराग होने से परम आप्त हैं, जगत के जीवों को आत्महित के उपदेष्टा हैं। तीर्थंकरों का उपदेश परम विश्वास योग्य है। तीर्थंकरों ने क्या उपदेश किया ?

भगवान के श्रीमुख से ऐसा निकला है कि हम जो उपदेश करते हैं, उसीप्रकार वैसा ही इस काल के या भविष्यकाल के मुमुक्षु जीवों को मोक्ष का उपाय है। भविष्य में पंचमकाल कठिन आयेगा, इसलिए उस काल का उपाय अन्य प्रकार का है – ऐसा भगवान ने नहीं कहा है। भगवान का उपदेश भविष्यकाल के जीवों के लिए भी एक ही प्रकार का है। धर्म का अन्य मार्ग है ही नहीं। आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-रमणता ही तीन काल-तीन लोक के जीवों के लिए मोक्ष का उपाय है।

तीनों काल के अरिहंतों का उपदेश एक ही प्रकार का है कि स्वाश्रय से धर्म है। भूतकाल में जो भगवान मोक्ष को प्राप्त हुए, उन्होंने उसी विधि से मोक्ष प्राप्त किया है और अरिहंतदशा में उन्होंने उस काल प्रत्यक्ष श्रवण करनेवाले जीवों को इसी मार्ग का उपदेश दिया है तथा भविष्य काल के मुमुक्षुओं के लिए भी एक ही उपाय स्थापित किया है।

भगवान मोक्ष जाने से पूर्व जगत के मुमुक्षु जीवों को मोक्ष का उपाय सौंप गये हैं....हम इस उपाय से मोक्ष प्राप्त कर रहे हैं और जगत के मुमुक्षु भी इसी उपाय से मोक्ष प्राप्त करेंगे। जिसप्रकार अंतिम समय पिता अपने पुत्र को संपत्ति सौंप देता है और समझाता है, उसीप्रकार परम धर्मपिता सर्वज्ञप्रभु, परम वीतराग आप्तपुरुष मुक्ति प्राप्त करने से पूर्व (सिद्ध होने से पूर्व) तीर्थंकर पद से दिव्य उपदेश द्वारा जगत के भव्य जीवों को मोक्ष का उपाय दर्शाते हैं, उनके स्वभाव की संपत्ति सौंपते हैं, हे जीवो ! तुम्हारा आत्मा सिद्ध समान शुद्ध है, उसे पहिचान कर उसकी शरण लो...स्वभाव की शरण तो मुक्ति का कारण है, बाह्य आश्रय बंध का कारण है। धर्मपिता तीर्थंकर ऐसा स्वाश्रित मोक्ष का मार्ग बतला कर सिद्ध हुए, अहो ! उन्हें नमस्कार हो।

साधक आत्मा के परम पिता श्री तीर्थंकरदेव हैं। वे कहते हैं कि अहो जीवो ! आत्मा को पहिचानो....आत्मा को जानो! आत्मा स्वाधीन सत् पदार्थ है, वह पर के आश्रयरहित अपने से परिपूर्ण है।

भगवान को स्वाश्रयभाव की पूर्णता होने से केवलज्ञान होता है, समवसरण की रचना होती है, दिव्यध्वनि 'ऊँ' वीतराग भाव से खिरती है और बारह सभाओं के जीव यह उपदेश सुनते हैं। भगवान की वाणी में ऐसा उपदेश है कि आत्मा को पहिचानो रे....पहिचानो....सर्वप्रकार से

आत्मस्वभाव का ही आश्रय करो, वही मुक्ति का मार्ग है....अनंत तीर्थंकरों ने दुदुंभी के नाद के बीच दिव्यध्वनि में यह एक ही मार्ग जगत के जीवों को दर्शाया है।

जिनेन्द्र देवों ने आत्मस्वभाव की ओर के पुरुषार्थ से मुक्ति प्राप्त की है और दिव्यध्वनि में जगत के जीवों को पुरुषार्थ का ही उपदेश दिया है....हे जगत के जीवो ! संसार-समुद्र से पार होने के लिए सच्चा पुरुषार्थ करो....पुरुषार्थ करो। अपने आत्मा को सर्वज्ञ समान समझ कर सर्वज्ञ की ओट लेकर पुरुषार्थ करो...जिसप्रकार सर्वज्ञदेव ने स्वाश्रय किया उसीप्रकार तुम भी अपने आत्मा का आश्रय करो!

आचार्यदेव कहते हैं कि अरिहंत भगवान जैसे अपने चैतन्यमूर्ति स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान करके हमने अपने ज्ञान को स्थिर किया है और उसे हमने अपने अनुभव से जाना है। अब हमारी मति को बदलने में कोई समर्थ नहीं है। जिसने स्वभाव का निर्णय करके ज्ञान को स्वभाव में स्थिर किया है, उसने स्वाश्रित मोक्षमार्ग को अंगीकार किया है। स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुआ भाव सदैव स्वभाव के साथ अभेदरूप से बना रहता है। इससे आचार्यदेव कहते हैं कि हमने अपने स्वभाव का आश्रय किया है, इसलिए मोह का क्षय करके अप्रतिहतभाव से केवलज्ञान प्रगट करनेवाले हैं...जिसप्रकार अरिहंत मोक्ष को प्राप्त हुए, उसी प्रकार हम भी ऐसा ही पुरुषार्थ करके मोक्ष प्राप्त करनेवाले हैं...भगवन्तों को नमस्कार हो।

स्वयं स्वाश्रय में मति स्थापित की है, किन्तु अभी छट्टे गुणस्थान में राग की वृत्ति उठती है, इसलिए आचार्यदेव भगवान की ओर के उल्लास को प्रगट करते हुए कहते हैं कि अरिहंत भगवन्तों को नमस्कार हो...अहो नाथ ! आप स्वभाव के आश्रय से मोह का क्षय करके केवलज्ञान को प्राप्त हुए, उसीप्रकार मैं भी आपका ही उत्तराधिकार लेने के लिए स्वाश्रय से आपके पीछे चला आ रहा हूँ। अहो ! जिन्होंने ऐसा पूर्ण स्वतंत्र स्वाश्रित मार्ग बतला कर अनंत उपकार किया है। उन भगवन्तों को मैं नमस्कार करता हूँ अर्थात् मैं भी उस स्वाश्रय को ही अंगीकार करता हूँ। भगवान के चरणकमलों में हमारा नमस्कार हो, भगवान के बतलाये हुए स्वाश्रित मार्ग को हमारा नमस्कार हो। आचार्यदेव स्वयं अपने मोक्ष के लिए उत्साह और प्रसन्नता व्यक्त करते हैं कि हे प्रभो ! जिस रीति से आपने मुक्ति प्राप्त की, उसीप्रकार हम भी मोक्ष के मार्ग पर ही हैं, हम भी केवलज्ञान प्रगट करेंगे और वही उपदेश देकर मोक्ष प्राप्त करेंगे। और क्या कहें ? भगवन्तों को नमस्कार करते हैं। वास्तव

में भगवान ने जैसा स्वाश्रय मार्ग का उपदेश दिया है, उसे यथावत् समझ कर वैसा ही स्वाश्रय अपने में प्रगट करना, सो भगवान को नमस्कार है।

आचार्यदेव कहते हैं कि अहो ! जिन्होंने मुझे ऐसा स्वभाव समझाया, उन भगवन्तों को नमस्कार हो। भगवंत स्वयं स्वाश्रित शुद्धोपयोग के बल से मोह का नाश करके जगत को भी ऐसा ही उपदेश देकर सिद्ध हुए, उन्हें वंदन हो। आचार्यदेव स्वयं छद्मस्थ हैं; इसलिए विकल्प है, भगवान को नमस्कार करते हुए विकल्प का निषेध करते हैं और पूर्ण शुद्धोपयोग का ही आदर करते हैं। जितना शुद्धोपयोग प्रगट हुआ है, उतना निश्चय है; विकल्प वर्त रहा है, वह व्यवहार है। उस व्यवहार का निषेध है और शुद्धता का आदर है। इसप्रकार आचार्यदेव के निश्चय-व्यवहार की संधि है। वर्तमान में विकल्प है, उसका आदर नहीं है, किन्तु सर्वज्ञदेव ने जो स्वभाव बतलाया है, उस स्वभाव का ही आदर है। विकल्प के कारण ऐसा कहा है कि भगवन्तों को नमस्कार हो...अर्थात् वास्तव में तो भगवान जिसप्रकार स्वाश्रय करके पूर्ण हुए उसीप्रकार मैं स्वाश्रय को अंगीकार करता हूँ - यही तीर्थंकरों का पंथ है।

अरिहंत भगवंत स्वाश्रित ज्ञान की विधि द्वारा ही मोह का क्षय करके केवलज्ञान को प्राप्त हुए, और फिर दिव्यध्वनि में जगत के जीवों को भी ऐसा ही उपदेश दिया कि हे जगत के भव्य आत्मा ! जैसा हम कह रहे हैं, उसीप्रकार तुम आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय का अपने ज्ञान में निर्णय करो....और अपनी पर्याय को पराश्रय से छुड़ाकर स्वाधीन आत्मतत्त्व की ओर उन्मुख करो। हम पुरुषार्थ द्वारा सम्यक् आत्मस्वभाव की श्रद्धा और एकाग्रता से मोह का क्षय करके केवलज्ञान को प्राप्त हुए हैं, तुम्हें भी उसी विधि से, पुरुषार्थपूर्वक अपने सम्यक् आत्मतत्त्व की श्रद्धा और एकाग्रता करने से मोह का क्षय होकर सम्यग्दर्शन और केवलज्ञान की प्राप्ति होगी। इसलिए पुरुषार्थ द्वारा स्वाश्रय करो...।

आचार्य भगवान कहते हैं कि स्वाश्रय के पुरुषार्थ द्वारा मोह का क्षय करके जो केवलज्ञान को प्राप्त हुए और जगत को स्वाश्रयमार्ग का उपदेश देकर जो सिद्ध हुए - ऐसे भगवन्तों को मैं नमस्कार करता हूँ। हे नाथ ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ...जिस मार्ग से आप निवृत्त हुए, उसी मार्ग पर मैं चला आ रहा हूँ। हे पूर्ण पुरुषार्थ के स्वामी, भगवंत ! आपके दिव्य उपदेश की बलिहारी है। आपका उपदेश जीवों को पराश्रय से छुड़ाकर मोक्षमार्ग में लगानेवाला है। आपके चरणकमलों

में मैं नमस्कार करता हूँ...किसप्रकार नमन करता हूँ ? आपके उपदेश को प्राप्त करके, आपके द्वारा उपदेशित स्वाश्रित विधि को अंगीकार करके मैं आपके पथ पर चला आ रहा हूँ।

यहाँ एक ही प्रकार की विधि द्वारा मोक्ष का उपाय बतलाया है। अन्य किसी विधि से मोक्ष का उपाय है ही नहीं। मूढ़-अज्ञानी लोग तो ऐसी मान्यता को ऐकांतिक मान्यता समझते हैं, क्योंकि उन्हें स्वाश्रय का भान नहीं है। ज्ञानी तो कहते हैं कि ऐसे स्वाश्रयमार्ग की यथार्थ मान्यता, सो क्षायिक जैसा अप्रतिहत सम्यग्दर्शन है। अहो नाथ ! जिस उपाय से आपने द्रव्य-गुण-पर्याय को पहिचान कर, क्रमबद्ध आत्मपर्याय को जानकर, अभेद स्वरूप की प्रतीति और स्थिरता करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप निर्मलदशा प्रगट की और अरिहंत दशा को प्राप्त हुए तथा जगत को वही उपदेश देकर सिद्धदशा प्राप्त की, उसीप्रकार हम भी आपका स्वाश्रय का उपदेश सुनकर, इसी रीति से स्वाश्रय द्वारा सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र प्रगट करके मुक्त होंगे। इसके लिए हे नाथ ! आपको नमस्कार हो।

'आत्मा ज्ञानस्वभावी है, उस स्वभाव के आश्रय से ही ज्ञाता-दृष्टा रहकर जान' - यह जिनेन्द्रदेव के सर्व उपदेश का मूल सार है....भगवान कहते हैं कि जैसे भगवान हम, वैसे ही भगवान तुम। इतने महान रागरहित परिपूर्ण स्वभाव का जिसने अपने ज्ञान में निर्णय किया, उसने अकेले आत्मा के आश्रय का स्वीकार किया और समस्त परद्रव्य तथा परभावों के आश्रय की मान्यता छोड़ दी, उसे अनंत पुरुषार्थ प्रगट हुआ है...वह जीव तीर्थंकरों के पथ पर चलने लगा है।

आचार्यदेव कहते हैं कि हे भाई ! तीर्थंकरों ने स्वाश्रय का उपदेश किया था, इस समय भी स्वाश्रय हो सकता है। तीर्थंकर कहीं यह नहीं कहते थे कि 'तू हमारा आश्रय कर!' तीर्थंकर तो यह कहते थे कि तू अपने स्वभाव का निर्णय करके अपना ही आश्रय कर। इस समय भी स्वभाव का निर्णय करके-स्वाश्रय प्रगट करके तीर्थंकरों के पथ पर विचरण किया जा सकता है।

श्री सीमंधरादि अरिहंत भगवन्तों को नमस्कार हो।
श्री तीर्थंकरों के स्वाश्रित पंथ को नमस्कार हो।
तीर्थंकरों का पंथ दर्शानेवाले संतों को नमस्कार हो।

(श्री प्रवचनसार गाथा 82 पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों के कुछ अंश)

वीतराग के भक्त कैसे होते हैं ?

तीर्थधाम सोनगढ़ में भगवान श्री सीमंधर प्रभु की पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा के अठाईमहोत्सव प्रसंग पर वीर सं. 2467 के फाल्गुन कृष्णा 12 के दिन, पद्मनन्दिपंचविंशतिका के शांतिनाथ स्तोत्र पर पूज्य कानजीस्वामी का प्रवचन

14. वीतराग के भक्त का उत्तरदायित्व

यह श्री शांतिनाथ भगवान का स्तोत्र पढ़ा जा रहा है। आत्मा शांत अविकारस्वरूप है, शांति के लिए उसे किन्हीं परपदार्थों की आवश्यकता नहीं है। आत्मा की शांति स्वावलम्बी है, बाह्य पदार्थों का अवलम्बन लेना पड़े, वह विकार है। भगवान को पूर्ण स्वावलम्बी शांति प्रगट हो गई है, जिसे ऐसी शांति की रुचि हो, वह भगवान को पहिचान कर उनकी भक्ति करता है। इन्द्र आकर त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर भगवान के चरणों में मस्तक झुका देते हैं और स्तुति करते हुए कहते हैं कि हे नाथ ! पुण्य के फलस्वरूप मिला हुआ यह इन्द्रपद और देवांगनाएँ आदि वैभव कुछ हमें आदरणीय नहीं है, प्रभो ! आपको जो वीतरागी शांतस्वभाव प्रगट हुआ है, उसी का हमें आदर है, ऐसा जो समझे उसने भगवान की भक्ति की - ऐसा कहा जाता है। पुण्य को आदरणीय माने तो उसने भगवान की सच्ची भक्ति नहीं की है। भगवान का आदर करनेवाला पुण्य का आदर नहीं करता।

इन्द्र को पुण्य का ठठ होने पर भी, जिन्होंने पुण्य वैभव का त्याग किया है—ऐसे संत के चरणों में नमस्कार करते हैं....क्योंकि उनमें जो वीतरागता है, उसी का वे बहुमान करते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि भगवान को नमन करनेवाले जीव को पुण्य की रुचि नहीं है किन्तु वीतरागता का ही बहुमान है। अहो ! वीतरागदेव को नमन करनेवाले जीव की दृष्टि में वीतरागता की रुचि है, अब वह जीव आत्मस्वभाव से विरुद्ध भावों को नमे - यह कैसे हो सकता है। एक म्यान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं।

15. भगवान के भक्त ज्ञानी की दशा कैसे होती है ?

अहो ! वीतरागस्वभावी आत्मा की रुचि करके, उसके गीत गाकर अनुमोदन किया है...अब ऐसा आत्मा प्राप्त करके ही रहेंगे...इससे विरुद्ध पुण्य के फल की रुचि नहीं है। एक की अस्ति में दूसरे की नास्ति है। ज्ञानस्वभावी आत्मा की रुचि की अस्ति में विकार की नास्ति है। ज्ञान की रुचि हो और विकार की रुचि दूर न हो – ऐसा नहीं हो सकता। बनारसीदासजी कहते हैं कि –

'ज्ञानकला जिसके घट जागी, ते जगमांहि सहज वैरागी,
ज्ञानी मगन विषयसुख मांही यह विपरीत संभवे नाही।'

अहो...जिसके अंतर में आत्मज्ञानरूपी कला प्रगट हुई, वह जीव जगत में सहज वैरागी होता है...ज्ञानी विषयसुख में मग्न हो – ऐसी विपरीत बात कदापि संभव नहीं है। आत्मज्ञान हो और विषयों में से सुखबुद्धि दूर न हो – ऐसा कभी नहीं हो सकता। समयसार के निर्जरा अधिकार में सम्यग्दृष्टि का वर्णन करते हुए भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं कि मिथ्यात्व की गांठ दूर होकर, जिसे ऐसा भान हुआ है कि मैं आत्मा निर्मल ज्ञायक हूँ, वह ज्ञानी मिथ्यादृष्टि की प्रीति करे अथवा विषयों में सुख माने – ऐसी विपरीतता कभी संभव नहीं है। एक की 'हाँ' वहाँ दूसरे की 'ना'...स्व की रुचि, वहाँ पर के प्रति उदासीनता...ज्ञान के साथ वैराग्य सहज होता ही है। कोई कहे कि 'आत्मा शुद्ध, पूर्ण वीतराग है' – ऐसा भान तो हुआ है, किन्तु मेरी रुचि पर के ऊपर से नहीं हटी है तो ऐसा कदापि नहीं हो सकता। पर के ऊपर से रुचि न हटी हो तो आत्मा की रुचि नहीं हुई है। ज्ञानी को आत्मा के अतिरिक्त अन्य विषयों की रुचि नहीं होती है। धर्म की पहिचान हो, आत्मा की प्रीति हो और पर के ऊपर की प्रीति न हटे – यह कैसे हो सकता है ? मैं ज्ञानमूर्ति आत्मा पर से निराला हूँ, मेरी शांति मुझमें है' – ऐसा भान करके वीतरागी आनंदघन स्वभाव का गुणगान करनेवाला जीव विषयों के गीत कैसे गा सकता है ? कदापि नहीं गाता। यहाँ सर्वज्ञ भगवान की स्तुति चल रही है। भगवान को आत्मा का भान हुआ, तीन काल-तीन लोक का ज्ञान हुआ, आत्मा शक्तिरूप से तो पूर्ण था ही और अब वह पूर्ण शक्ति विकसित हो गई....ऐसे वीतराग भगवान को पहिचान कर उनके गुण गानेवाला विकार के किसी पक्ष की प्रशंसा नहीं कर सकता....और यदि विकार के पक्ष की प्रशंसा करे तो वह वीतराग का भक्त नहीं है, धर्मी नहीं है। जिसे वीतरागस्वभाव

की रुचि नहीं है, वही विषयों की प्रीति करता है। वीतरागस्वभाव की रुचिवाले को अन्यत्र कहीं भी आनंद नहीं आता। भगवान की भक्ति करने से भगवान कहीं किसी को कुछ दे नहीं देते। किन्तु जैसे भगवान वैसा ही मैं, भगवान भी आत्मा की शक्ति में से हुए हैं – ऐसा भान करके स्वयं अपने में से धर्म निकालता है। लोग कहते हैं कि किसी का दिया हुआ काम में नहीं आता।' इसलिए यदि भगवान मुक्ति देते हों तो दूसरा कोई आकर उसे छुड़ा ले....किन्तु ऐसा नहीं है। स्वयं अपने त्रिकाली स्वभाव के आश्रय से ही मुक्ति प्रगट करता है और नित्य के आश्रय से प्रगट हुई वह मुक्ति भी नित्यस्थायी होती है, ऐसे अपने स्वभाव का भान करे तो 'उसने भगवान की शरण ली' – ऐसा व्यवहार से कहा जाता है।

16. एक बार वंदे जो कोई....

शक्तिरूप से प्रत्येक आत्मा स्वयं 'शांतिनाथ भगवान' है और व्यक्तिरूप से जो प्रगट परमात्मा हुए हैं – ऐसे त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर वीतरागी चैतन्यभगवान... अहो ! उनकी शरण चाहिए। भक्ति में आता है कि एक बार यदि यथार्थरूप से प्रभु वंदना हो तो कार्य की सिद्धि हो जाये....इस समय महाविदेहक्षेत्र में श्री सीमंधर प्रभु विराजमान हैं। हे त्रिलोकीनाथ देवाधिदेव भगवान ! कोई आपको यदि एक बार पहिचान कर वंदना करे तो उसके जन्म-मरण दूर हो जायें। किसप्रकार ? – हे नाथ ! जैसा आपका स्वभाव, वैसा ही मेरा स्वभाव है, मैं शुद्ध-पवित्र स्वरूप हूँ, किसी दूसरे के पास से मुझे कुछ नहीं लेना है, मेरी अखण्ड चैतन्यनिधि मेरे ही पास है' – ऐसे भान सहित जिसने भगवान को नमन किया, उसे भव नहीं रहते। भगवान को 'त्रिलोकीनाथ, त्रिलोकपति' कहा जाता है, वहाँ भगवान कहीं जड़ के या पर के स्वामी नहीं हैं, किन्तु उनके दिव्यज्ञान में तीनों लोक प्रतिभासित होते हैं, इसलिए उन्हें 'त्रिलोकपति' कहा जाता है। ऐसे भगवान को पहिचान कर, उनकी भक्ति करते हुए 'मैं ही अपना रक्षक हूँ' – ऐसा न कहकर, 'हे भगवान ! आप हमारे रक्षक हैं' – ऐसी विनयभाव की भाषा आती है।

17. वीतराग के भक्त को राग का आदर नहीं होता

भक्ति में जो शुभराग है, उसका आदर धर्मात्मा को नहीं होता। अहो ! जिस भाव से तीर्थंकर नामकर्म का बंध हो या इन्द्र पद, चक्रवर्ती पद अथवा बलदेव-वासुदेव की पदवी मिले, उस भाव

को धर्मी जीव शुभ विकार जानता है, वीतरागता के आदर में उन किसी भी भावों का आदर उसे नहीं होता। जिस राग से पुण्य की प्रकृति का बंध हो, वह भी बंधनभाव है, धर्मी को उस राग का आदर न होने पर भी, अभी पूर्ण वीतरागता नहीं हुई है, इसलिए अपूर्ण दशा में धर्मवृद्धि के शुभविकल्प से तीर्थंकर प्रकृति आदि का बंध हो जाता है। देवाधिदेव तीर्थंकर का आत्मा जब माता के गर्भ में आता है, उस समय चौदह ब्रह्माण्ड में प्रकाश हो जाता है। भगवान तो महान पवित्रता और पुण्य की मूर्ति हैं। मैं अपनी वीतरागता पूर्ण करूँ, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं चाहिए – ऐसी भावना में बीच में अल्प राग रहा, उससे तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो गया...और त्रिलोकपूज्य तीर्थंकर पद प्राप्त हुआ।

प्रश्न – एक राग के कण में इतना हो जाता है तो अधिक राग में तो न जाने कितना होगा ?

उत्तर – अरे भाई ! राग की भावनावालों को यह पद नहीं मिलते। जिस राग से तीर्थंकरादि पद की प्राप्ति होती है, वह राग विषय-कषाय का नहीं है...किन्तु वह तो आत्मा के भानपूर्वक धर्मवृद्धि का राग था, आत्मस्वभाव की भावना थी, राग की भावना नहीं थी। जिसे राग का राग है, उसे तो अधर्म का राग है, उसे उच्च पुण्य का बंध नहीं होता। 'मैं निर्मल ज्ञानघन आत्मा हूँ, राग का एक अंश भी मेरा नहीं है' – ऐसे भानसहित धर्म की ओर उन्मुखता है, वहाँ कुछ राग रह गया, वह प्रशस्तराग है और उस राग में भी आदरबुद्धि नहीं है, वहाँ तीर्थंकर प्रकृति आदि पुण्य का बंध हो जाता है। जो जीव आत्मा के वीतरागी स्वरूप को नहीं समझता और राग को आदरणीय मानता है, वह आत्मस्वरूप का भक्त नहीं है, वीतरागदेव का सेवक नहीं है। जिसे आत्मा की रुचि हो, वह वीतराग परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी के गीत नहीं गाता, उसके अंतर में लक्ष्मी-कुटुम्ब के गीत नहीं होते।

18. ....तो जीवन की सार्थकता क्या ?

अपने पीछे पुत्र-पौत्र, मकान, लक्ष्मी आदि को छोड़कर चला जाये, वहाँ लोग कहते हैं कि 'दादाजी भरा-पूरा छोड़कर गये हैं.....किन्तु ज्ञानी कहते हैं कि अरे भाई ! वह तो पूर्व के जो पुण्य लेकर आया था, उन्हें जलाकर चला गया है....जीवन में आत्मा की पहिचान नहीं की तो उसकी क्या गिनती ? पीछे धन-जन आदि सबकुछ पड़ा रहा, उससे आत्मा को क्या लाभ ? दादा तो

आत्मा के भान बिना मरकर न जाने किस गति में चले गये। जगत के अनेक जीव आत्मा की दरकार किये बिना केंचुए और कुत्ते-बिल्ली की भांति मरते हैं। अहो ! अनंतकाल के अनजान जीव और अनजाना पंथ...उसमें आत्मा की शांति का भान न करे और आत्मा की रुचि भी न करे तो जन्म-मरण कैसे दूर हो ?

19. इन्द्र की भक्ति और भावना

यहाँ वीतराग भगवान की भक्ति का वर्णन है, पहिचानपूर्वक की भावना है। जिन्हें आत्मा का भान है और जो एकावतारी हैं - ऐसे इन्द्र भी भगवान के निकट भक्ति से नाच उठते हैं... तीर्थंकर भगवान का जन्म होने पर इन्द्र आकर भगवान की माता की स्तुति करते हुए कहते हैं कि हे माता ! आपने जगत को दीपक दिया है...हे जगतदीप की दात्री माता! आपने हमें जगत प्रकाशक दीपक दिया है। हे लोक की माता ! आपने हमें जगत का नाथ दिया है...आप तीर्थंकर भगवान की जन्मदात्री हो....इन्द्र तीन ज्ञान के धारक हैं, आत्मा का भान है, एक भव में मोक्ष जाने वाले हैं - ऐसा स्वयं को निश्चय तो हो गया है और यह भगवान तो इसी भव में मोक्ष प्राप्त करनेवाले हैं। जिन्हें एक ही भव में मोक्ष प्राप्त करना है - ऐसे इन्द्र, इसी भव में मोक्ष जाने वाले भगवान का गुणगान पेट भरकर करते हैं अर्थात् गीत गाते तृप्त नहीं होते। इन्द्र को पुण्य की भावना नहीं है...इन्द्रासन पर बैठते हैं, उस समय भी भावना करते हैं कि यह जो ऋद्धि है, सो हमारी नहीं है, हम तो चैतन्यस्वरूप हैं...अहो, धन्य वह घड़ी और धन्य वह पल, कि जिससमय मनुष्य भव प्राप्त करके, चारित्र लेकर मुनि होंगे और केवलज्ञान प्राप्त करेंगे। चारित्रदशा के समक्ष यह इन्द्रपद की ऋद्धि तुच्छ है। चारित्र का सर्वोत्तम साधन जो मुनिदशा-केवलज्ञान को हथेली में लेने की तैयारी, उसके गीत तो इन्द्र भी गाते हैं और उसकी भावना करते हैं। अल्पमति के छोटे गज के माप में बड़ी बात न जमे तो भी त्रिकाल ऐसा ही है, महाविदेह में भगवान की धर्म सभा में ऐसा हो रहा है। जैसे - अट्टालिका के ऊपर के वैभव और सजावट को नीचे धरती पर खड़ा हुआ कैसे देख सकता है ? सीढ़ी पर खड़ा हुआ आदमी देखकर कहता है कि यहाँ अपार वैभव भरा है, किन्तु नीचे धरती पर खड़ा हुआ कहता है कि - मुझे तो कुछ दिखाई नहीं देता।' किन्तु भाई ! सीढ़ी पर चढ़कर ऐसे तभी दिखाई देगा न ? उसीप्रकार चैतन्य भगवान आत्मा की अनंत समृद्धि, और आत्मा के केवलज्ञान की समृद्धि तथा

तीर्थंकर भगवान के समवशरण की विभूति (अर्थात् ऊर्ध्वगामी आत्मारूपी अट्टालिका का वैभव) देखने के लिए ऊर्ध्वगामी हो अर्थात् अंतर में त्रिकालीस्वभाव की श्रेणी की सीढ़ी पर चढ़, अंतर में जाग्रत होकर वीतराग स्वभाव को देखने की दृष्टि प्रगट कर। बाह्य में देखने से कुछ भी दिखाई नहीं देगा, अंतरस्वभाव में आगे बढ़ तो अनंत केवलज्ञान की ऋद्धि दृष्टिगोचर होगी।

20. भगवान की सच्ची भक्ति और उनकी भेंट

आचार्यदेव कहते हैं कि भगवान की धर्मसभा में देवों द्वारा जो दुन्दुभी (नगारा) बजती है, वह भगवान की प्रभुता की घोषणा कर रही है कि जगत में सेवन करने योग्य देवाधिदेव हों तो वे यह एक ही हैं, इनके समान उच्च पुरुष नहीं है, इनके अतिरिक्त कोई त्रिलोकीनाथ नहीं हो सकता और त्रिलोकीनाथ भगवान ने दिव्यध्वनिरूपी नगारे में आत्मा की प्रभुता की घोषणा की है कि सभी जीव स्वभाव से भगवान ही हैं...तुम अपने स्वभाव को समझ कर धर्म प्राप्त कर लो...आत्मा के स्वभाव की पूर्ण हुई दशा में वर्तते हुए अरिहंत भगवान की जो वाणी निकली, वह आत्महितकारी वाणी किसे मान्य है ? सज्जनों को मान्य है। हे नाथ ! हे तीर्थंकर ! जो आत्महित के कामी हैं, ऐसे गंभीर पुरुषों को आत्मार्थी पुरुषों को आत्मा की श्रद्धा और निर्मल ज्ञान करें, ऐसे धर्मी जीवों को आपकी ही वाणी मान्य है। दुर्जनों ने अपनी कल्पना से जो कुछ माना है, वह यथार्थ स्वरूप नहीं है। अज्ञानी जीव तो मानों भगवान लक्ष्मी आदि दे सकेंगे – ऐसा मानकर 'हे दीनानाथ ! कृपा करना' – इसप्रकार स्तुति में बोलते हैं, वे वास्तव में वीतराग भगवान की नहीं किन्तु विषयकषाय की स्तुति करते हैं, उन्होंने वीतराग भगवान को नहीं जाना है। 'हे दीनबन्धु ! दया करना !' ऐसा ज्ञानी की भाषा में भी आता है, किन्तु ज्ञानी समझते हैं कि वह तो मात्र भक्ति-विनय में उपचार की भाषा है, भगवन तो कहीं दया का रागभाव नहीं होता और न भगवान हमें कुछ देते हैं, हमारी प्रभुता तो हमारे स्वभाव में से आनेवाली है। इस प्रकार अपनी स्वतंत्र प्रभुता का भान रखकर धर्मात्मा जीव भगवान की भक्ति करते हैं। 'दीनदयाल' – ऐसे विरद का अर्थ समझे बिना, वास्तव में भगवान मुझे कुछ दे देंगे, ऐसा मानकर, भगवान के पास से कुछ प्राप्त करने की इच्छा से जो स्तुति करता है, वह तो अपने को रंक रागी और पराश्रित मानता है, स्वयं अपने को गाली देता है, उसे धर्म नहीं होता। जिसप्रकार सूर्य के ऊपर धूल उड़ानेवाला वास्तव में अपनी आंखों में ही धूल डालता है, उसीप्रकार

भगवान को रागी माननेवाला वास्तव में स्वयं अपने आत्मा को ही गालियाँ देता है। हे नाथ ! आपको तो किसी के प्रति राग या द्वेष नहीं हैं, आप पूर्ण सर्वज्ञता को प्राप्त हुए हैं और मैं तो अपूर्ण हूँ, इससे आपको पहिचान कर पूर्णता की भावना से आपकी भक्ति करता हूँ। परमार्थ से तो भगवान की भक्ति अर्थात् आत्मा की पहिचान और बहुमान, उसमें बीच में विकल्प उठा, वह व्यवहार भक्ति है, राग है, उस राग के फल में पुण्यबंध होता है और बाह्य में साक्षात् भगवान की भेंट होती है और अंतर की परमार्थशक्ति के फल में अपनी परमात्मदशा प्रगट होती है। आत्मा शुद्ध है, उसकी श्रद्धा एवं स्थिरतारूपी भक्ति जम जाये तो अंतर के भगवान की भेंट हो।

शांतिनाथ भगवान की स्तुति करते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि हे नाथ ! आपके ही वचन सज्जनों को मान्य हैं, क्योंकि तत्त्व का निर्णय करने में भगवान के वचन कार्यकारी होते हैं, वैसे अन्य किसी के वचन उपयोगी नहीं होते। इसलिए सज्जन आपकी वाणी के अतिरिक्त किसी का आदर नहीं करते। ऐसे श्री शांतिनाथ भगवान हमारी रक्षा करो। रक्षा का क्या अर्थ ? कि अपने आत्मस्वरूप की जितनी दशा प्राप्त की है, वहाँ से नीचे न गिरकर आगे बढ़ूँ और पूर्ण होऊँ, इसका नाम आत्मरक्षा है। स्वयं अपने भाव से वैसी रक्षा करता है, वहाँ विनय से कहता है कि श्री शांतिनाथ भगवान हमारी रक्षा करो।'

21. दिव्य सिंहासन पर विराजमान निरालंबी जिनेन्द्र की स्तुति

पहले श्लोक में तीन छत्रों का वर्णन करके भगवान की स्तुति की, दूसरे श्लोक में देव दुदुंभी का वर्णन करके भगवान की स्तुति की, अब, तीसरे श्लोक में सिंहासन का वर्णन करके भगवान की स्तुति करते हैं –

दिव्यश्रीमुखपंकजैकमुकुरप्रोल्लासिनानामणि
स्फारीभूतविचित्ररश्मिरचिता नम्रानरेन्द्रयुधैः।
सच्चित्रीकृतवातवर्त्मनिलससिंहासने यः स्थितः।
सोऽस्मान् पातु निरंजनो जितपतिः श्री शांतिनाथः सदा ॥3॥

देवांगनाओं के मुखकमलरूपी एक दर्पण में दैदीप्यमान अनेक प्रकार के रत्नों की चारों

ओर फैली हुई किरणों द्वारा रचित तथा नमित जो इन्द्रधनुष, उससे चित्र-विचित्र हुए आकाश में दिव्य सिंहासन पर जो विराजमान हैं - ऐसे निरंजन जिनेन्द्रदेव श्री शांतिनाथ भगवान सदैव हमारी रक्षा करो।

देखो, आचार्यदेव की भक्ति ! त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर भगवान धर्मसभा में विराजमान होते हैं और इन्द्र-इन्द्रानी उन्हें नमस्कार करते हैं। उस देवांगना के मुख को दर्पण की उपमा है, उस दर्पण में रत्नों के प्रतिबिंब पड़ते हैं और उसके प्रकाश की झांखी में आकाश में भिन्न-भिन्न प्रकार के रंग होते हैं, इससे इन्द्रधनुष जैसा लगता है। ऐसे आकाश के मध्य में दिव्य सिंहासन पर हे नाथ ! आप विराजमान हैं। छत्र, दुदुंभी, इन्द्राणी या सिंहासन आदि देखकर हमें तो एक भगवान ही याद आते हैं....एक भगवान की ही मुख्यता भासित होती है। हे नाथ ! आपके पुण्य की अलौकिक ऋद्धि में जहाँ दृष्टि करता हूँ, वहाँ सार में सार एक आपको ही देखता हूँ। समवसरण में भगवान सिंहासन से भी चार अंगुल ऊपर आकाश में निरालम्बीरूप से विराजते हैं। उन निरालम्बी भगवान को देखने से सार में सार का लक्ष होता है। जिसप्रकार भगवान का शरीर निरालम्बी है, उसीप्रकार आत्मा का स्वभाव भी निरालम्बी है। जिसप्रकार समवसरण में संयोग को न देखकर भगवान को ही मुख्य देखता हूँ, उसीप्रकार यहाँ भी संयोग न को न देखकर अंतर में चैतन्यभगवान विराजते हैं, उन्हीं को देखता हूँ। यह देह-मन-वाणी आदि चित्र-विचित्र पदार्थ हैं, उस संयोग से रहित अकेला भगवान आत्मा भीतर विराजमान है, वहीं मेरी दृष्टि पड़ी है। ऐसा आत्मा सार में सार है। हे नाथ ! मैं ऐसे पूर्ण वीतरागस्वभाव का दास हूँ, इससे अपूर्ण का दास नहीं हूँ। इसप्रकार प्रथम पूर्ण स्वभाव को श्रद्धा-रुचि में लेना, सो धर्म है।

22. धर्म

धर्म का अर्थ क्या ? 'धारयतीति धर्मः' यानी जो धारण कर रखे, वह धर्म है। अखण्ड शुद्ध आत्मा को सम्यक्श्रद्धा में धारण कर रखना और मिथ्यात्व में न पड़ने देना, उसका नाम धर्म है। पहले विपरीत श्रद्धा में विषय-कषाय आदि का धारण था, वह अधर्म था और उससे जीव संसार में भटकता था। उसके बदले अब चैतन्यमूर्ति वीतरागी आत्मस्वभाव को श्रद्धा में धारण किया और आत्मा को संसार में गिरने से धारण कर रखा-रोक रखा, वह धर्म है। प्रथम ऐसी आत्मा की श्रद्धा

करना, सो भगवान की सच्ची भक्ति है। इसके अतिरिक्त भगवान की भक्ति से शरीरादि समाग्री की रक्षा होने की भगवान से याचना करे तो वह अज्ञानी है, भगवान का भक्त नहीं है।

23. भगवान के भक्त की भावना कैसी होती है ?

'अहो ! मेरा आत्मा भगवान जैसा सर्वज्ञ वीतराग परिपूर्ण है' – ऐसा समझ कर जो भगवान की भक्ति करे, वह जीव जगत की कौनसी वस्तु की स्पृहा रखेगा ? जगत की कौनसी वस्तु का आदर करेगा ? आजकल तो कोई कोई ऐसा भी मानते हैं कि 'भगवान के निकट भक्तामर स्तोत्र बोले तो अन्न-वत्र की कमी नहीं पड़ सकती।' अरे भाई ! क्या भगवान से ऐसी आशा रखी जाती है ? ज्ञानी तो भावना करते हैं कि हे नाथ ! हमारी रक्षा करो ! अर्थात् हमारे आत्मा में श्रद्धा-ज्ञान-वीतरागता प्रगट हो...वीतरागी परिणाम में भगवान का निमित्त है, इसलिए 'घी के घड़े' की भांति, 'भगवान हमारी वीतरागता की रक्षा करो' – ऐसा व्यवहार से कहा जाता है, किन्तु वास्तव में भगवान के पास से कुछ लेना नहीं है, आत्मा का अपना स्वभाव कहाँ अपूर्ण है जो वह किसी से रक्षण मांगे ? धर्मसभा में वीतरागी त्रिलोकीनाथ परमात्मा ने जब धर्म की प्ररूपणा को, उस समय जो जीव स्वभाव को समझे, उन्होंने धर्म प्राप्त किया...इसलिए भगवान उनके धर्म में निमित्त हुए। वहाँ उन जीवों को भगवान के प्रति भक्ति उछलती है। भगवान के उपदेश के समय उसे समझ कर धर्म प्राप्त करनेवाले जीव न हों – ऐसा नहीं हो सकता।

24. तीर्थंकर की वाणी खिरे, वहाँ धर्म की वृद्धि करनेवाले जीव होते ही हैं

महावीर भगवान को वैशाख शुक्ला 6के दिन केवलज्ञान हुआ, किन्तु छियासठ दिन तक वाणी नहीं खिरी...इन्द्र विचार करता है कि यह क्या ? भगवान को त्रिकाली ज्ञान हुआ....शरीर के रजकण स्फटिक समान उज्ज्वल हो गये...देह अद्धर आकाश में पाँच सौ धनुष ऊपर चढ़ गया...समवशरण की रचना हो गई....बारह सभाएँ लग गईं....तथापि भगवान की दिव्यध्वनि क्यों नहीं खिरती ? उसने उपयोग लगा कर ज्ञान में देखा कि भगवान की उत्कृष्ट वाणी झेल सके ऐसा गणधर पद के योग्य पुरुष सभा में उपस्थित नहीं है और ऐसे समर्थ श्री इन्द्रभूति (गौतम) हैं। पश्चात् इन्द्र उनके निकट जाकर भगवान के साथ वाद-विवाद करने के बहाने उन्हें बुलाता है...मानस्तंभ के निकट आते ही इन्द्रभूमि का मान गलित होता है...भगवान की दिव्यध्वनि की धारा

छूटती है और इन्द्रभूति गणधर होते हैं....पहले तो वे प्रथम भूमिका में थे और अब छट्ठी-सातवीं भूमिका में विचरने लगे। यहाँ वाणी की योग्यता और सामने गणधर पद की योग्यता - ऐसा मेल सहज ही हो जाता है। तीर्थंकर भगवान की देशना छूटे, वहाँ उसे झेलकर धर्म की वृद्धि करनेवाले जीव, गणधर आदि तैयार होते ही हैं। भगवान की ध्वनि खिरे और सभा में धर्म की वृद्धि न हो - ऐसा नहीं हो सकता। सामने गणधर नहीं थे तो भगवान की वाणी भी नहीं खिरी, देखो मेल ! वाणी झेलनेवाला न हो और भगवान की वाणी ऐसी की ऐसी निकल जाये - ऐसा कभी नहीं हो सकता। यह जो बात कही जा रही है, वह त्रिकाल सत्य है। पहले साधकदशा में धर्मवृद्धि के भाव से वाणी का बंध हुआ, वह वाणी दूसरों को धर्म प्राप्त करानेवाली है...तीर्थंकर भगवान की वाणी धर्म प्राप्त करने के लिए उत्कृष्ट निमित्त है....वह वाणी छूटे और धर्म का लाभ लेनेवाले जीव न हों, ऐसा नहीं हो सकता। जैसे - जहाँ चक्रवर्ती की उत्पत्ति हो, वहाँ चौदह रत्न भी जगत में उत्पन्न होते हैं। जहाँ तीर्थंकर उत्पन्न हों, वहाँ गणधरादि की योग्यतावाले जीव भी तैयार होते ही हैं। वीतराग की उत्कृष्ट वाणी और जीवों की योग्यता का मेल जमने से मोक्ष के भुट्टे (फल) उत्पन्न होते हैं। जिसप्रकार कल्पवृक्ष फले और उसके फल लेनेवाले न हों, ऐसा नहीं हो सकता, उसीप्रकार जहाँ तीर्थंकर भगवान की उत्पत्ति हो, वहाँ उनका उपदेश सुनकर मोक्ष प्राप्त करनेवाले जीव न हों - ऐसा नहीं हो सकता। ऐसे श्री सीमंधरादि तीर्थंकर भगवान इस समय महाविदेह में साक्षात् विराज रहे हैं और वहाँ अनेक जीव मोक्ष प्राप्त कर रहे हैं....उन सीमंधर भगवान की स्थापना अपने यहाँ हो रही है।

****

.....तो ज्ञानी क्या कहते हैं ?

कोई कुतर्क से पुण्य द्वारा धर्म मनाये तो ज्ञानी उसे सत्य नहीं मानते; किन्तु कहते हैं कि जिसप्रकार विष खाने से कभी अमृत की डकारें नहीं आ सकती उसीप्रकार जिस भाव से बंधन हो उस भाव से कभी मोक्ष नहीं होता किंतु मोक्षमार्ग का प्रारंभ भी उससे नहीं होता। **-समयसार-प्रवचन से**

☆★☆★☆★☆★☆★☆★

श्री सीमंधरनाथ की प्रतिष्ठा प्रसंग पर

पूज्य श्री कानजी स्वामी के श्रीमुख से

प्रवाहित

भक्ति-सरिता

☆★☆★☆★☆★☆★☆★

तीर्थधाम सोनगढ़ में भगवान श्री सीमंधर प्रभु की पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा के अठाईमहोत्सव में, वीर सं. 2467 के फाल्गुन कृष्णा 30 के दिन भगवान के जन्मकल्याणक प्रसंग पर, पद्मनन्दिपंचविंशतिका के शांतिनाथ स्तोत्र पर पूज्य कानजी स्वामी का प्रवचन

25. भगवान का जन्म और इन्द्रों की भक्ति

यह वीतराग भगवान की स्तुति चल रही है। जो वीतरागस्वरूप के गीत गाये, उसके अंतर में राग की-पुण्य की रुचि नहीं होती। जो जीव वीतरागता का गुणगान करे, वह संसारभाव की रुचि क्यों करेगा ? एक की रुचि होने से दूसरे की रुचि हट जाती है। असंख्य देवों के पति शक्रेन्द्र और ईशान इन्द्र भी भगवान का जन्म होने पर महान जन्मोत्सव करने आते हैं और जन्माभिषेक करके भक्ति से नृत्य करते हैं। हे तीर्थंकरनाथ ! आपकी भक्ति की क्या बात करें। साधारण जीवों के हृदय में आपकी भक्ति की बात जमना भी कठिन मालूम होती है।

तीर्थंकर के पुण्य अलौकिक होते हैं...जिनसे तीर्थंकर पद, इन्द्रपद, बलदेव-वासुदेव पद की प्राप्ति हो, ऐसे पुण्य आत्मज्ञानी के अतिरिक्त किसी के नहीं बंधते। पूर्व भव में भगवान को आत्मा का भान था....वीतरागस्वरूप की पहिचान थी...वह पहिचान स्वयं पुण्य व धन का कारण नहीं है, किन्तु राग का कुछ भाग बाकी था, उस राग से पुण्य का बंध हुआ। जिसप्रकार प्यारे पुत्र को देखकर माता का हृदय प्रेम से नाच उठता है, उसीप्रकार भगवान को देखकर इन्द्र भक्ति से नाच उठते हैं।

जिसे आत्मा के वीतरागस्वरूप की प्रीति हुई है, उसे त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर वीतराग परमात्मा को देखकर अंतर में भक्ति की उमंग जोर से चढ़ती है। इन्द्र-इन्द्राणी जैसे एकावतारी धर्मात्मा भी तीर्थंकर का जन्म होने पर भक्ति करने आते हैं। इन्द्राणी बालप्रभु को लेकर इन्द्र के हाथ में देती है, इन्द्र हजार नेत्र बनाकर भगवान को निरखता है, तथापि उसे तृप्ति नहीं होती। स्वयं सम्यक्त्वी हैं और एक भव में मोक्ष प्राप्त करना है, किन्तु जब भगवान को हाथों में लेते हैं, उस समय अंतर से उमंग उठती है...वहाँ वीतरागता के बहुमान के बल से भव के टुकड़े हो जाते हैं।

26. धर्मी को भगवान की भक्ति उछले बिना नहीं रहेगी

तीन खण्ड के स्वामी श्रीकृष्ण, उनकी माता देवकी। देवकी को श्रीकृष्ण का जन्म होते ही उनका वियोग पड़ा....फिर जब बहुत काल पश्चात् कृष्ण को देखती हैं, तब देखते ही 'अहो! मेरा कृष्ण' - इसप्रकार पुत्र प्रेम से हृदय प्रफुल्लित हो जाता है और स्तन में से दूध की धारा बहने लगती है। पुत्र को तो अब दूध की आवश्यकता नहीं है, किन्तु माता के स्तन में से दूध झरे बिना नहीं रहता.....उसीप्रकार आत्मा वीतरागस्वरूप चैतन्यमूर्ति आनंदघन है, उसकी जिसे रुचि हो, उस जीव को, बाह्य में भी वीतरागता के निमित्तभूत अरिहंत परमात्मा को देखते हो - 'अहो ! मेरे भगवान...' इसप्रकार भक्ति उछले बिना नहीं रहती, जगद्गुरु तीर्थंकर को देखते ही अंतर से भक्ति का उल्लास जागृत होता है। भगवान तो वीतराग हैं, उन्हें कहाँ भक्ति की आवश्यकता नहीं है, किन्तु जिसे वीतरागता की सच्ची प्रीति है, उसे भक्ति का भाव बदले बिना नहीं रहेगा। इस समय भरतक्षेत्र में साक्षात् भगवान का तो विरह है....साक्षात् वीतराग प्रभु के विरह में उनकी वीतरागी मुद्रावाली प्रतिमा को देखकर भगवान का स्मरण करते भक्ति करते हैं, और प्रतिमा में भी 'अहो ! यह भगवान ही हैं' - इसप्रकार अपने भाव का निक्षेप करते हैं। पं. बनारसीदासजी कहते हैं कि -

कहत बनारसी अलप भव थिति जाकी,
सोई जिनप्रतिमा प्रमान जिन सारखी।।

धर्मी को अंतर में वीतरागी आत्मस्वरूप भासित हुआ है, किन्तु अभी पूर्ण वीतरागता नहीं हुई, इसलिए वीतराग प्रभु का बहुमान करते हैं। आत्मा के वीतरागपने की भावना के उल्लासपूर्वक वीतराग भगवान की स्थापना करते हैं और उनकी भक्ति करते हैं।

27. धन्य यह अलंकार युक्त भक्ति !

यहाँ पद्मनन्दि आचार्यदेव श्री शांतिनाथ भगवान की स्तुति करते हैं, उसमें पाँचवें श्लोक में कहते हैं कि – 'हे नाथ! आपके भामण्डल की दिव्यता के सन्मुख यह सूर्य और चन्द्र भी प्रभाहीन मालूम पड़ते हैं....मानो अग्नि के दो अंगारे हों अथवा तो सफेद बादलों के टुकड़े हों' आचार्यदेव सर्वत्र भगवान की महिमा ही देख रहे हैं... ।

'हरतां फरतां प्रगट हरि देखूँ रे....
मारुं जीव्युं सफल तब लेखुं रे...'

समस्त पापों को दूर करके जिन्होंने आत्मा का आनंद प्रगट किया है – ऐसे त्रिलोकीनाथ भगवान को यहाँ 'हरि' रूप से संबोध कर कहते हैं कि हमारे पापों का नाश करने वाले हे हरि! आकाश में पड़नेवाले यह सूरज और चंद्र तो बादलों के टुकड़े जैसे लगते हैं। जिससमय मेरु पर्वत पर आपका जन्माभिषेक हुआ और इन्द्र ने आपकी भक्ति की, उस समय भक्ति करते हुए उसके हाथ फैले, और बादलों के साथ टकराने से बादल के टुकड़े हो गये, उसमें से दो टुकड़े सूर्य और चंद्र रूप से अभी आकाश में उड़ रहे हैं। देखो, अलंकार और भक्ति ! आचार्यदेव जहाँ देखो वहाँ भगवान को, भगवान के कल्याणक को तथा इन्द्र की भक्ति को ही देखते हैं। सूर्य-चंद्र को देखने से भी हे नाथ! आपकी महिमा और आपके कल्याणक ही याद आते हैं। हे नाथ! जिसप्रकार इन्द्र भक्ति करता था, उस समय आकाश में घनघोर बादल के टुकड़े हो गये, उसीप्रकार आपकी वीतरागता की भक्ति से, हमारे आत्मा पर जो कर्मरूपी बादल थे, वे फट गये।

धन्य रे धन्य ! पद्मनन्दि आचार्यदेव की भक्ति ! यह पद्मनन्दि आचार्य महान दिगम्बर संत थे...जंगल में विचरते हुए...आत्मा के आनंद की रमणता में झूलते थे...महान वीतरागी थे....उनको विकल्प उठने से वीतराग भगवान की स्तुति की है। उसमें अलंकार से कहते हैं कि हे नाथ ! आकाश में यह बादलों के टुकड़े नहीं हैं, किन्तु तेरी स्तुति करने से कर्मों के टुकड़े होते हैं, कर्मरूपी बादल फटकर उनके टुकड़े उड़कर वहाँ जाते हैं। आकाश में बादलों को देखकर अंतर में ऐसा होता है कि हे नाथ ! मैं तो आपकी भक्ति से निर्मल हो गया हूँ और मेरे कर्मों के टुकड़े उड़कर वहाँ चिपक गये हैं। देखो, वीतरागता का बहुमान।

और, हे नाथ ! आकाश में दिखलाई देने वाले सूर्य-चन्द्र भी आपके भामण्डल के निकट अग्नि के अंगारे जैसे प्रतीत होते हैं। केवलज्ञान ज्योति प्रगट करने के लिए आपने जब उग्र ध्यानाग्नि प्रगट करके कर्मों को जला दिया, तब उनकी चिंगारियाँ आकाश में उड़ने से अभी सूर्य-चंद्ररूप से आकाश में फिर रही है। हे नाथ ! आपकी ध्यानाग्नि से जले हुए कर्म के रजकण (सूर्य और चंद्र) भी जगत में प्रकाश करते हैं, तब फिर आपके दिव्य केवलज्ञान-प्रकाश की तो बात ही क्या की जाये ? इसप्रकार भगवान के केवलज्ञान की स्तुति करके आचार्यदेव ने अपने केवलज्ञान की भावना और महिमा की है। अंतर में पूर्ण स्वभाव का बहुमान जागृत हुआ है, वह वीतराग के गीत गवा रहा है।

28. धर्मात्मा की वीतरागता पोषक भक्ति

त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर प्रभु को देखकर इन्द्र भक्ति से विचार करता है कि हे नाथ ! आपकी और मेरी सत्ता तो पृथक् ही है, किन्तु स्वभाव समान है। आपको वह स्वभाव पूर्ण प्रगट हो गया है और हम अपूर्ण हैं....पर्याय में अंतर पड़ा है...किन्तु हे नाथ ! मैं स्वभाव के बल से वह अन्तर तोड़ दूँगा। जो ऐसा जानता है, उसे भगवान के प्रति भक्ति उछलती है। जो ऐसा न जाने, उसे यथार्थ भक्ति कैसे उल्लसित होंगी ? विषय-कषाय के पाप भाव टालने और वीतरागता की भावना को पोषण करने के लिए वीतराग भगवान की भक्ति जिज्ञासु को आती है। राग होने पर भी जिसे वीतराग भगवान की भक्ति अच्छी नहीं लगती, वह तीव्र मूढ़ है। अहो ! जिनके आत्मा की तो बात ही क्या की जाये, किन्तु जिनके दिव्य शरीर के तेज में हजारों सूर्य का तेज भी ढंक जाता है - ऐसे तीर्थंकर भगवान के गीत इन्द्र और गणधर गाएं, तथापि पूरे नहीं होते। इस समय महाविदेहक्षेत्र में दैवी समवसरण में गंधकुटी पर सिंहासन से चार अंगुल ऊपर श्री सीमंधर भगवान विराज रहे हैं। वहाँ कल्पवृक्ष के फलों से और मणिरत्नों के दीपकों से भगवान की पूजा करते हुए सम्यक्त्वी चक्रवर्ती कहते हैं कि हे जिनेन्द्र ! आपकी वीतरागता की भक्ति करने के लिए मेरे पास कुछ नहीं है...हे नाथ ! पूर्ण वीतरागता का भान है और वीतरागता का अंश प्रगट हुआ है, जब अंतर में पूर्ण वीतरागता प्रगट करेंगे, तब आपकी भक्ति पूर्ण होगी। जहाँ रागरहित आत्मा की श्रद्धा हो, वहाँ स्थूल रागभाव तो दूर हो ही जाते हैं, इसलिए कुदेवादि का राग दूर होकर वीतराग भगवान के प्रति भक्ति जागृत हुए बिना नहीं रहती।

29. जिनेन्द्र भक्ति का उल्लास किसे नहीं आता ?

कोई जीव संसार के हेतु से तो चौबीस घंटे पाप-परिणामों का सेवन करे और भगवान की भक्ति का प्रसंग आने पर शिथिल हो जाये तो वह पापी है, अज्ञानी है, आचार्यदेव उसकी गणना जैन संप्रदाय में नहीं करते। जैन कहलाये और जिनेन्द्र भगवान की भक्ति न उछले, तो वह जैन कैसा ? और साथ ही साथ यह भी समझना चाहिए कि धर्मी जीव उस भक्ति के राग को धर्म नहीं मानते। भगवान की भक्ति के समय भी धर्मी की दृष्टि शुद्ध स्वभाव पर पड़ी है, उसी की महिमा कर रहे हैं, शुद्ध दृष्टिपूर्वक जितना राग दूर हुआ, उतना लाभ है; जो राग रहा, वह धर्म नहीं है। अज्ञानी तो भड़क उठते हैं कि 'हाय ! हाय ! भगवान की भक्ति से मुक्ति नहीं मिलती ? भगवान की भक्ति से धर्म नहीं होता ?' हाँ, भाई ! सत्य तो त्रिकाल ऐसा ही है। भक्ति के राग से तो पुण्यबंध ही होता है। और 'मैं शुद्ध ज्ञान हूँ' - ऐसा शुद्धस्वभाव का अभिप्राय रहे, वह धर्म और मुक्ति का कारण है, वही भगवान की निश्चयभक्ति है। भगवान की भक्ति के समय भी यह बात लक्ष में रखना चाहिए। अभी तो भगवान पधार रहे हैं, इसलिए आठ दिन तक भगवान की भावना करना है। कोई पूछे कि भगवान की भावना से क्या होगा ? तो कहते हैं कि भगवान की भावना से भगवान होना है। जिसे जिसका भगवान होना है, उस ओर वह उन्मुख होता है। सोते-जागते जिसे सर्वज्ञ भगवान का रंग लगा और मेरा आत्मा भगवान जैसा है - ऐसा भान हुआ उसका सारा झुकाव आत्मा की ओर ढलकर वह भगवान हुए बिनरा नहीं रहेगा। अहो, अंतर में विचार करो कि 'मैं कहाँ खड़ा हूँ' जैन संप्रदाय में जन्म लेकर भी कभी भगवान की भक्ति का शौर्य नहीं चढ़ा....रंग नहीं लगा तो वह अंतर के भगवान की ओर तो कहाँ से उन्मुख होगा ?

भगवान की भक्ति की बात आये, वहाँ कोई ऐसा कहे कि 'भक्ति तो राग है और उससे पुण्यबंधन हो जाता है, इसलिए हमें भक्ति का उल्लास नहीं आता।' तो उससे कहते हैं कि हे भाई ! यदि तू वीतरागरूप से रह सकता हो तो तेरी बात ठीक है, किन्तु अभी स्त्री, लक्ष्मी, शरीरादि के अशुभ पापराग में तुझे उल्लास आता है और भगवान की भक्ति के समय उल्लास नहीं आता तथा वहाँ पुण्यबंधन कहकर उस बात को उड़ा देता है, तो तू शुष्क स्वच्छंदी है। श्रीमद् ने एक गाथा में कहा है कि -

उपादाननुं नाम लई अे जे तजे निमित्त,
पामे नहि सिद्धत्वने रहे भ्रान्तिमां स्थित।।136।।

उपादान को, जो शुभभाव है, वह तो प्रगट हुआ नहीं है और निमित्तरूप वीतराग भगवान की भक्ति को भी छोड़ देता है, तो वह तो अकेले पापों में पड़कर संसार में परिभ्रमण करेगा। निमित्त का राग आदरणीय नहीं है, यह बात सच है, किन्तु उस कथन को पकड़ कर जो वीतरागी निमित्त को भक्ति छोड़कर संसार के निमित्तों के राग का पोषण करता है, उसे तो पुण्य-पाप का भी विवेक नहीं है, निमित्त का भी विवेक नहीं है तो उसे उपादान में धर्म नहीं हो सकता।

30. भक्तों की भक्ति

पर के लिए तो कोई कुछ करता ही नहीं है, मात्र अपने भाव का पोषण करता है। स्त्री आदि के शरीर पर वस्त्र-आभूषण देखकर अपने पापराग की पुष्टि होती है, इसलिए उस राग के हेतु से वस्त्र-आभूषण लाकर स्त्री को देता है। उसीप्रकार वीतराग भगवान को देखकर धर्मी की वीतराग भावना की पुष्टि होती है, इसलिए यहाँ उसे भक्ति आये बिना नहीं रहती। वह कहीं भगवान के लिए भक्ति नहीं करता, किन्तु अपने को पाप से बचाकर उसप्रकार का शुभराग आता है, इससे भक्ति करता है। जिसप्रकार स्त्री के रागी को स्त्री की प्राप्ति होने पर उल्लास आता है, उसीप्रकार वीतरागता के प्रेमी को वीतराग भगवान से भेंट होने पर उल्लास आता है। भगवान के भक्त, भगवान के निकट जाकर कहते हैं कि हे नाथ ! हे प्रभु ! आपकी वीतरागता के प्रेम से आपसे मिलने आया हूँ....प्रभु ! मेरे अंतर में आपके प्रति प्रेम जागृत हुआ है, उसे दूसरे क्या समझेंगे ? नाथ ! आप और मैं - दोनों जानते हैं। हे नाथ ! आपकी वीतरागी मुद्रा निहारते हुए ऐसा अनुभव होता है कि मानो अंतर से प्रभुता प्रगट हुई...या...प्रगट होगी। हे नाथ ! आपको देखते समय मैं अपनी प्रभुता को ही देखता हूँ....अपने ज्ञान को ही देखता हूँ। देखो ! यह भक्ति का सुअवसर आया है...ऐसे अमूल्य दिवस बहुत कम आते हैं। संसार का प्रेम कम करके वीतराग भगवान को पहिचानकर पात्र जीव उनके ही गीत गाते हैं...उसमें उनकी रुचि तो भगवान जैसे अपने शुद्ध आत्मस्वभाव पर ही जाती है।

31. 'जहाँ दृष्टि जाती है, वहाँ हे जिनेन्द्र ! आपकी भक्ति ही दिखाई देती है

अब श्री तीर्थंकर भगवान के समवसरण में जो अशोक वृक्ष होता है, उसमें अलंकार करके

भगवान की स्तुति करते हुए छट्ठे श्लोक में श्री आचार्यदेव कहते हैं कि हे नाथ ! यह अशोक वृक्ष भी आपकी भक्ति ही कर रहा है। किसप्रकार ! उसके खिले हुए पुष्पों पर बैठे हुए भंवरों का जो गुंजन है, वह ऐसा लगता है कि मानों अशोकवृक्ष आपके निर्मल यश का गुणगान ही कर रहा है...और पवन से कांपती हुई उसकी डालियों का अग्र भाग देखकर ऐसा लगता है कि वह अपने हाथ फैलाकर आपके निकट भक्ति पूर्वक नृत्य कर रहा है....देखो ! आचार्यदेव को भगवान के प्रति भक्ति है, इसलिए अशोकवृक्ष को भी वे भगवान के भक्ति करता हुआ देखते हैं। भाव तो अपना ही है न ! वाह रे वाह मुनि ! आपकी भक्ति ! आपकी भक्ति ने तो अशोकवृक्ष को भी भाषा देकर बोलता कर दिया। हे जिनेन्द्र ! मनरहित वह अशोक वृक्ष भी जहाँ आपकी स्तुति कर रहा है, तब फिर ऐसे मुनीन्द्र और देवेन्द्र आपकी स्तुति करें, इसमें क्या आश्चर्य ? ऐसा कहकर, जिन्हें भगवान के प्रति भक्ति जागृत नहीं हो – ऐसे जीवों पर आचार्यदेव ने कटाक्ष का प्रहार किया है। हे नाथ ! आपके ज्ञानादि गुणों की सुगन्ध से आकर्षित होकर भंवरे की गुंजन द्वारा आपकी भक्ति स्तुति करने का मन हुआ, तब फिर दूसरा कौन होगा जिसे आपके प्रति भक्ति जाग्रत नहीं होगी ? इन्द्रादि आपके गुणों की स्तुति करें, इसमें क्या आश्चर्य ? अन्तर में बिलकुल निरभिमानतापूर्वक आचार्यदेव स्तुति करते हैं। स्तुति में भी वीतरागता का ही मंथन होता है, अल्प राग है, उसका स्वामित्व नहीं है, मुख्यता नहीं है। स्वरूप की वीतरागी अवस्था प्रगट हुई, उसमें अभिमान काहे का रहेगा ? अभिमान तो मैल है। निर्मल अवस्था प्रगट हुई, उसमें मैल नहीं होता।

32. भक्तिरस से आर्द्र भक्तों के हृदय को कौन जानेगा ?

यहाँ तो आचार्यदेव ने स्तुति की है, इन्द्रादि भी भगवान के निकट ऐसी भक्ति करते हैं कि आजकल के साधारण प्राणी तो उसे सहन भी नहीं कर सकते, उन्हें तो ऐसा लगता है कि अरे! यह क्या ? किन्तु भाई ! भक्ति क्या है, उसका तुझे भान नहीं है। कोई अभिमानी कहेगा कि अरे ! आचार्यदेव ने कैसी स्तुति की ? क्या भंवरे कभी भक्ति करते होंगे ? ऐसी स्तुति तो बालक भी नहीं करेगा। तो यहाँ उससे कहते हैं कि – अरे जा! पुरुषार्थहीन! आचार्य भगवान की भक्ति की तुझे क्या खबर पड़े ? तुझमें बुद्धि ही कितनी है ? आचार्यदेव ने समझ कर गीत गाये हैं। जैसे तीन लोक के नाथ परमात्मा के गीत गाये हैं, वैसे ही तीन लोक के नाथ स्वयं होनेवाले हैं। अरे धूर्त, अभिमानी ! तुझे धर्मात्मा के हृदय की क्या खबर पड़ेगी ? तुझे आत्मतत्त्व की महिमा भासित नहीं हुई है, इसलिए जिन्हें

आत्मतत्त्व का पूर्ण सामर्थ्य प्रगट हो गया है, ऐसे परमात्मा की महिमा तुझे खबर नहीं है। ढाई हजार वर्ष पूर्व यहाँ भरतक्षेत्र में भी श्री महावीर परमात्मा विराजमान थे, उस समय आकाश में से इन्द्र उनकी स्तुति करने के लिए आते थे। इस बात की श्रद्धा जिसे न बैठे, वह तो नास्तिक है...उसने सर्वज्ञदेव की महिमा नहीं जानी है और आत्मा के धर्म की भी महिमा का भी उसे भान नहीं है। भगवान की भक्ति का भी जो निषेध करता है, उसके तो दुर्गति में जाने के लक्षण हैं.....शास्त्रों में भगवान की भक्ति का जो वर्णन आता है, वह उसके हृदय में कैसे समा सकता है ? अहो ! यह तो नग्न मुनि....जंगल में बसनेवाले पंचमहाव्रत का पालन करनेवाले...सिर देकर भी सत्य को रखनेवाले...और आत्मस्वभाव में झूलनेवाले....महा वीतरागी संत (पद्मनन्दि आचार्य) वीतराग की स्तुति का वर्णन करते हैं। आत्मा की महिमा जाने बिना अज्ञानी को वीतराग की सच्ची महिमा कहाँ से आये ?

33. हे सीमंधरनाथ.....! हमें आपका विरह.....!

जिनके जन्म से चौदह ब्रह्माण्ड में आनन्द का सागर उमड़ पड़े...जिनके जन्म से समस्त लोक में प्रकाश हो जाये....और इन्द्र भक्ति से नाच उठें – ऐसे तीर्थंकर प्रभु के कल्याणक इस समय मनाये जा रहे हैं। यहाँ तो सीमंधर प्रभु की स्थापना है। सीमंधर प्रभु इस समय महाविदेह में साक्षात् विराज रहे हैं और यह सब जो कहा जा रहा है, वह महाविदेह में इन्द्र द्वारा हो रहा है। यह कल्पना नहीं है....वीतराग भगवान के यह गीत बिलकुल सत्य गाये जा रहे हैं। जिसने मिट्टी के और घास-फूस के झोंपड़े ही देखे हों, उससे कोई कहे कि अमुक जगह हाथी दांत के महल होते हैं....तो वह इस बात को कैसे मान सकता है ? उसीप्रकार वीतरागदेव के यह गीत अज्ञानियों के गले नहीं उतरते...क्योंकि कभी देखा नहीं है...जाना नहीं है। सीमंधर भगवान इस समय समवशरण में विराज रहे हैं, वहाँ अनेक संत केवलज्ञान प्राप्त कर रहे हैं...इन्द्र और देव स्तुति करने आते हैं और भवना करते हैं कि हे नाथ! हम मनुष्यभव प्राप्त करके कब केवलज्ञान प्राप्त करेंगे ? यहाँ भक्तिभाव में उछलते हुए भक्त कहते हैं कि हे सीमंधरनाथ ! हमें महाविदेह के मनुष्यों की ईर्ष्या होती है...अरे रे ! महाविदेह के मानव आपके साक्षात् चरणों की सेवा कर कर रहे हैं....और हमारा इस भरतक्षेत्र में अवतार....इतना अंतर ?...हमें आपका विरह.... ! हे नाथ ! आत्मा को उसका पश्चाताप होता है.....परमार्थ से, भीतर भगवान आत्मा क्या है – उसका भान सो भगवान की स्तुति है...निमित्तरूप से तीर्थंकर भगवान की स्तुति है...समझ-समझ कर जो भगवान के गीत गायेगा वह भगवान होगा।

34. भक्त के हृदय में अंकित वीतराग की भक्ति

हे भगवान ! आपके निर्मल स्वरूप की स्तुति करते हुए इन्द्रादिक को देखकर मनरहित भंवरे को भी उसकी ईर्ष्या हुई और वह भी गुंजन द्वारा आपकी स्तुति करने लगा....तो हे जिनेन्द्र! जिसे मनुष्य का अवतार मिला....आर्य क्षेत्र मिला...जैन सम्प्रदाय मिला....सत्य का श्रवण मिला और अपूर्व बात कानों में पड़ी, उसे लाभ न हो, तथा आपकी भक्ति जाग्रत न हो, यह कैसे हो सकता है ? हे प्रभो ! आपके समवसरण में पुष्पवर्षा होती है, वह भी मानों आपकी स्तुति के शब्दों में हार बरस रहे हों - ऐसा हमें लगता है। देखो तो ! भक्त प्रतिक्षण-प्रतिपल भगवान को ही देखते हैं....चौबीस घंटे ही क्रिया में 'भगवान आत्मा वीतराग' ऐसी रटन चलती है। हे वीतराग ! आपने तो अपना कार्य पूर्ण कर लिया.....और हमारा कार्य अभी अधूरा पड़ा है, इसलिए चौबीस घंटे में एक क्षण भी आपकी वीतरागता का विस्मरण कैसे हो सकता है ? जिस प्रकार माता से बिछड़े हुए बालक की माता का विस्मरण एक क्षण भी नहीं होता, उसीप्रकार धर्मात्माओं के हृदय में तीर्थंकरों की स्तुति इसप्रकार अंकित हो गई है कि एक समय भी उसका विस्मरण नहीं होता।

भरत चक्रवर्ती ऋषभदेव भगवान के पुत्र भगवान के परम भक्त सम्यग्दृष्टि थे, उसी भव में मोक्ष जाने वाले छह खण्ड के स्वामी थे, जिनके लिखने की चाक की-(काकिणी रत्न की) एक हजार देव सेवा करते हैं, वे दिग्विजय करके वृषभाचल पर्वत पर जब अपना नाम लिखते हैं, उस समय कहते हैं कि अरे ! इस पर्वत पर अनंत चक्रवर्तियों के नाम लिखे गये और मिट गये....अपना नाम लिखने के लिए मुझ से पूर्व के चक्रवर्ती के लिखे हुए नाम को मुझे मिटाना पड़ता है और मेरे लिखे हुए नाम को दूसरा कोई मिटायेगा....धिक्कार इस मोह को! धन्य है त्रिलोकीनाथ प्रभु वीतराग को...मुझे इसी भव में मोक्ष जाना है, भगवान ने मुझसे कहा है कि तू इसी भव में मोक्ष प्राप्त करेगा....तथापि यह अस्थिरता का मोह होता है, इसे धिक्कार है। अहो! अंतर में वीतरागता के अतिरिक्त अन्य भाव का बिलकुल आदर नहीं है.....मोह को कर्त्तव्य नहीं माना है....भिन्नत्व का भान हटकर मोह में एकाकार नहीं होते हैं। भीतर अपनी पूर्ण प्रभुता का निःशंक भान है, वर्तमान अवस्था की अपेक्षा से आत्मा का मंथन करते हैं और पूर्ण स्वभाव के गीत गाते हैं। इसप्रकार, हे वीतरागदेव ! महान चक्रवर्तियों के हृदय में भी आपकी स्तुति अंकित हो गई है।

35. भक्ति-सरिता और केवलज्ञान-समुद्र

यहाँ स्तुतिकार कहते हैं कि अहो ! जिनके मन नहीं था, ऐसे भंवरे भी भगवान को देखकर स्तुति करने लगे...और, हमारा यह भक्ति का स्तोत्र सुनकर यदि तुझे अंतर में आह्लाद न आये तो अरे जीव ! तू भंवरे में से भी जायेगा। अपने को भक्ति का भाव उछला है, इसलिए आचार्यदेव तो सबको भगवान की भक्ति करते हुए ही देख रहे हैं। हे भगवान ! भंवरे के मन नहीं होता किन्तु अपनी स्तुति करने के लिए मन दिया, तो हे प्रभु ! मुझमें केवलज्ञान नहीं है, वह मुझे पूर्ण प्रदान कर ! जब भंवरे को भी मन दिया तो मुझे क्यों नहीं देगा ! इसप्रकार अलंकार करके भक्ति में भी आचार्यदेव अपने केवलज्ञान की ही झंकार करते हैं। (इसप्रकार यह भक्तिसरिता केवलज्ञान-समुद्र में जाकर मिल जाती है।) ●

****

प्रकाश के पहले की संध्या

चेतन जड़ नहीं होता और जड़ चेतन नहीं होता। जड़ के स्वभाव में चेतनत्व नहीं होता और चेतन के स्वभाव में जड़त्व नहीं होता। जड़ के संयोग से होनेवाला विकार भी वास्तव में चेतन का स्वभाव नहीं है। जैसे सर्वज्ञदेव सदा चैतन्य वीतरागमूर्ति हैं, वैसा ही आत्मा का स्वभाव है। ऐसे लक्ष सहित वीतराग भगवान की भक्ति आदि का राग आये, वह प्रात:काल की संध्या जैसा होता है। जिसप्रकार प्रात:काल की संध्या के पश्चात् सूर्य उदित होता है और सायंकाल की संध्या के पश्चात् सूर्य अस्त हो जाता है। उसीप्रकार वीतरागता के लक्षपूर्वक भगवान की भक्ति आदि का जो शुभराग है, वह प्रात:काल की संध्या जैसा है, उसके बाद जगमगाता हुआ सूर्य उदित होता है। जिसे वीतरागता का लक्ष नहीं है, वीतरागदेव की भक्ति नहीं है और मात्र शरीरादि जड़ के राग का पोषण करता है, उसे तो उस संध्या के पीछे अंधकार आयेगा, उससे चैतन्यसूर्य ढंक जायेगा। जहाँ स्वभाव का लक्ष है, वहाँ वर्तमान राग की लालामी की मुख्यता नहीं है, किन्तु यह राग मेरा स्वरूप नहीं है - इसप्रकार वीतरागस्वरूप के लक्ष से वह राग दूर होकर चैतन्य प्रकाश प्रगट होगा और पूर्ण केवलज्ञान होगा। (सोनगढ़ प्रतिष्ठा महोत्सव के प्रवचनों से)

****

भक्त कहते हैं –
हमारी भगवान से भेंट हुई ...

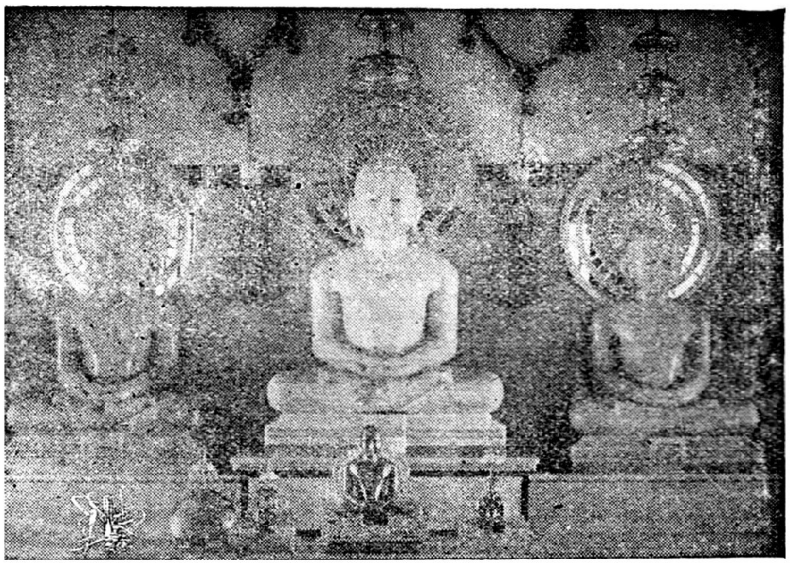

'....भगवान भेंटे....'

भगवान की वीतरागी मुद्रा को निरखते हुए अंतर में अपने वीतरागभाव की वृद्धि के लिए भगवान के भक्त प्रसन्नतापूर्वक कहते हैं कि –

'उपशमवरसे रे....प्रभु तारा नयनमां,
हृदयकमलमां दया अनंत उभराय जो।
वदनकमल पर प्रसन्नता प्रसरी रही,
चरणकमल में भक्तिरस रेलाय जो।'

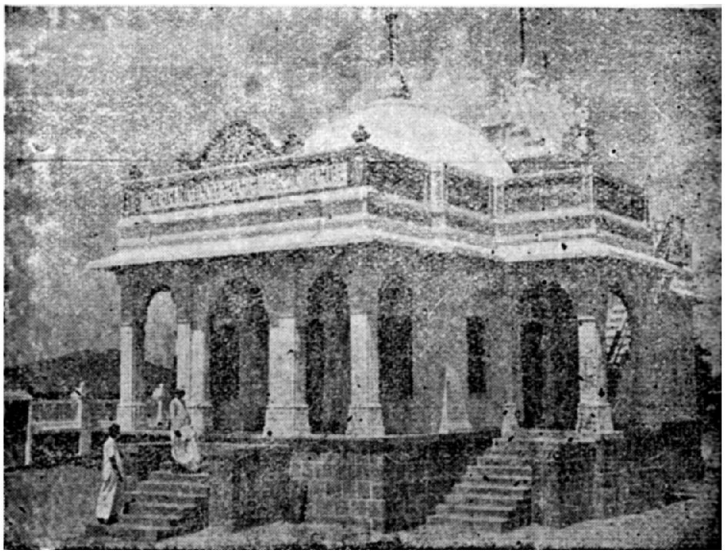

'....जिन मंदिर....'

देखो भक्ति ! भाव तो अपना है न ! अपने को वीतरागता अच्छी लगी है, उसी का बहुमान करते हैं। भगवान की प्रतिमा को देखकर भक्त कहते हैं कि अहो ! हमारी भगवान से भेंट हुई..साक्षात् सीमंधर भगवान हमारे आंगन में पधारे...प्रतिष्ठा के पश्चात् जब भगवान जिनमंदिर में पधार रहे थे, उस समय भक्त कहते थे कि 'पधारो...हे नाथ ! पधारो....' वे भक्त कहीं पागलपन से नहीं कहते थे, किन्तु भक्तिभाव के उत्साह में आकर कहते थे : हे नाथ ! आप वहाँ विराजमान हो और हम यहाँ भरत में हैं....किन्तु हे नाथ ! हम भक्तों की विनती सुनकर आप यहाँ पधारे...इसप्रकार भावना में भगवान के साथ बातें करते हैं। भगवान की जब मंदिर में स्थापना होती है, उस समय भक्त भावना करते हैं कि – हे भगवान आत्मा ! अब तू अंतर में से प्रगट विकासरूप हो...आत्मा में भगवान की स्थापना की, अब भगवानपना प्रगट होगा ही....अपने आत्मा में जिसने भगवत्पने की स्थापना की, वह एक क्षण भी भगवान को कैसे भूल सकता है ? हे नाथ ! हे चैतन्यमूर्ति भगवान ! सारा संसार भूला जा सकता है, किन्तु एक तुझे कैसे भूल सकता हूँ ? तेरी वीतरागता को एक क्षण भी नहीं भूल सकता। अज्ञानी जीव अपनी वीतरागता को भूलकर साक्षात् तीर्थंकर भगवान के समवसरण में गया, किन्तु उसे कोई लाभ नहीं हुआ। स्वयं तत्त्व को न समझे तो भगवान भी क्या करें ? जिसप्रकार पारसमणि का तो स्वभाव ऐसा है कि उसका स्पर्श होने से

लोहा सुवर्ण बन जाता है किन्तु यदि लोहे में जंग लगी हो तो पारसमणि क्या करे ? यहाँ कुन्दकुन्द भगवान कहते हैं कि हे नाथ ! आपकी पवित्रता के निकट पुण्य तो न कुछ है...पुण्य द्वारा आपकी परमार्थस्तुति नहीं हो सकती। शुद्ध ज्ञायक आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता द्वारा ही आपकी परमार्थस्तुति होती है। हे भगवान! आप तो पवित्र हो और आपकी स्तुति भी पवित्र है। जो जीव आत्मा के पवित्र स्वभाव को जानता है, वही केवली भगवान के सच्चे गीत गाता है और वही परमार्थस्तुति करता है। जिसे अपने गुणों की पहिचान हुई है, वह दूसरे विशेष गुणवान को देखकर उसके गुणों का बहुमान करता है और स्वयं वैसे गुण प्रगट करके पूर्ण परमात्मा होता है, इसप्रकार भगवान की सच्ची भक्ति का फल मुक्ति है।

विचरते बीस जिनको करूँ वंदन भाव से

इस पृथ्वी पर इस समय जैनधर्म के धुरंधर बीस
तीर्थंकर भगवान साक्षात् विचर रहे हैं,
उनके मंगल-नाम

1. श्री सीमंधर भगवान
2. श्री युगमंधर भगवान
3. श्री बाहु भगवान
4. श्री सुबाहु भगवान
5. श्री संजातक भगवान
6. श्री स्वयंप्रभ भगवान
7. श्री ऋषभानन भगवान
8. श्री अनंतवीर्य भगवान
9. श्री सूरप्रभ भगवान
10. श्री विशालकीर्ति भगवान
11. श्री वज्रधर भगवान
12. श्री चंद्रानन भगवान
13. श्री चन्द्रबाहु भगवान
14. श्री भुजंगम भगवान
15. श्री ईश्वर भगवान
16. श्री नेमप्रभ भगवान
17. श्री वीरसेन भगवान
18. श्री महाभद्र भगवान
19. श्री देवयश भगवान
20. श्री अजितवीर्य भगवान

मोक्षार्थी को मुक्ति का उल्लास

आत्मार्थी के परिणाम उल्लसित होते हैं, क्योंकि आत्मस्वभाव की साधना करके अल्पकाल में संसार से मुक्त होकर उसे सिद्ध होना है, इसलिए अपनी मुक्ति का उसे निरंतर उल्लास होता है, और इसी से वह उल्लसित वीर्यवान होता है।

(1)

श्री परमात्मप्रकाश में पशु का उदाहरण देकर कहते हैं कि यदि मोक्ष में उत्तम सुख न होता तो पशु भी बंधन से छूटने की इच्छा क्यों करते ? देखो, बंधन में बंधे हुए बछड़े को पानी पिलाने के लिए बंधन से छोड़ते हैं तो वहाँ छूटने के हर्ष में उछलकूद करने लगता है। अहा ! छूटने के समय पशु का बच्चा भी प्रसन्न होकर उछलने लगता है-नाचता है। तो अरे जीव ! तू अनादिकाल से अज्ञानभाव से इस संसार बंधन में बंधा हुआ है और अब इस मनुष्यभव में सत्समागम से इस संसार बंधन से मुक्त होने का सुअवसर आया है। श्री आचार्यदेव कहते हैं कि हम संसार से छूटकर मुक्ति प्राप्त हो, ऐसी बात सुनाते हैं..और उसे सुनते ही यदि तुझे संसार से छूटने की रुचि न हो तो उस बछड़े से भी गया बीता है। खुली हवा में फिरने और पानी पीने का समय आने पर स्वतंत्रता का आनंद मानने में बछड़े को भी कितनी प्रसन्नता होती है। तो फिर जिसे समझने से अनादि का संसार-बंधन छूटकर मोक्ष के परम आनंद की प्राप्ति हो - ऐसी चैतन्यस्वभाव की बात ज्ञानी के पास से सुनते हुए किस आत्मार्थी जीव को अंतर में रुचि और उल्लास नहीं आयेगा ? और जिसे अंतर में सत् समझने का उल्लास है, उसे अल्पकाल में मुक्ति हुए बिना नहीं रहेगी। प्रथम तो जीव को संसारभ्रमण में मनुष्य भव और सत्श्रवण मिलना ही बहुत महँगा है और क्वचित् सत् का श्रवण मिला, तब भी जीव ने अंतर में नहीं जमाया, इसलिए संसार में भटका। भाई ! यह तुझे शोभ नहीं देता....ऐसे अमूल्य अवसर पर भी तू आत्मस्वभाव को न समझे तो फिर कब समझेगा ? और इसे

समझे बिना तेरे भवभ्रमण का अंत कहाँ से आयेगा ? इसलिए भीतर से उल्लास लाकर सत्समागम से आत्मा को यथार्थ समझ ले।

(2)

आत्मा ने अनंतकाल से एक क्षणमात्र भी अपने स्वभाव को लक्ष में नहीं लिया है, इसलिए उसे समझना कठिन मालूम होता है और शरीरादि बाह्य क्रिया में तथा पुण्य में धर्म मानकर मनुष्य भव व्यर्थ गंवाता है। यदि आत्मस्वभाव की रुचि से अभ्यास करे तो उसे समझना सरल है। स्वभाव की बात महंगी नहीं होती। प्रत्येक आत्मा में समझने का सामर्थ्य है...किन्तु अपनी मुक्ति की बात सुनकर भीतर से उल्लास आना चाहिए....तो झट समझ में आ सकता है। जैसे – बैलों को जब घर से खेत पर काम करने ले जाते हैं, तब वे धीरे-धीरे चलते हैं और जाने में देरी लगती है, किन्तु खेत के काम से छूटकर घर लौटते हैं, उस समय दौड़ते आते हैं....क्योंकि उन्हें खबर है कि अब काम के बंधन से छूटकर चार पहर तक शांति से घास खाना है, इसलिए उन्हें प्रसन्नता तथा उत्साह आता है और उनकी गति में वेग आता है। देखो, बैल जैसे प्राणी को भी छुटकारे का उल्लास आता है। उसीप्रकार आत्मा अनादिकाल से स्वभाव गृह से च्युत होकर संसार में बैल की भाँति भटक रहा है...श्रीगुरु उसे स्वभाव गृह में लौटने की बात सुनाते हैं। अपनी मुक्ति का मार्ग सुनकर यदि जीव को उल्लास न आये तो वह उस बैल से गया बीता है। पात्र जीव को तो अपने स्वभाव की बात सुनते ही अंतर से मुक्ति का उल्लास आता है और अपना परिणमन वेग से स्वभावोन्मुख करता है। जितने काल तक संसार में परिभ्रमण किया उतना काल मोक्ष का उपाय करने में नहीं लगता, क्योंकि विकार की अपेक्षा स्वभाव की ओर का वीर्य अनंत है, इसलिए अल्पकाल में ही मोक्ष की साधना कर लेता है....किन्तु उसके लिए जीव को अंतर में यथार्थ उल्लास आना चाहिए।

- पूज्य स्वामीजी के प्रवचन से

सच्ची भक्ति का फल मुक्ति

(1) भगवान की भक्ति

वीतरागदेव तीर्थंकर भगवान की सच्ची स्तुति करनेवाला जीव कैसा होता है ? उसकी बात समयसारजी की 31वीं गाथा में है, और अपने यहाँ सीमंधर भगवान की भक्ति का महान प्रसंग है। पाँच जड़ इन्द्रियाँ, उनके विषयभूत बाह्य पदार्थ और उस ओर उन्मुख होनेवाली खण्ड-खण्ड ज्ञानरूप भावेन्द्रियाँ - वह मेरा स्वरूप नहीं है, मैं तो अखण्ड ज्ञायक हूँ - ऐसा जो समझे, वह जीव वीतराग प्रभु की सच्ची स्तुति करता है। इसके अतिरिक्त पर को, विकार को या खण्ड-खण्डरूप ज्ञान को ही जो आत्मा का स्वरूप मानता है, उसने वीतराग को नहीं जाना है। वीतराग भगवान का आत्मा तो अतीन्द्रिय अखण्ड ज्ञान-आनंदमय है, उनकी सच्ची भक्ति करने के लिए वैसे आत्मस्वरूप को पहिचानना तो पड़ेगा न ! जाने बिना भक्ति किसकी करेगा ? शुद्ध आत्मस्वरूप की श्रद्धा और ज्ञान करना, सो भगवान की पहली स्तुति है। जैसे भगवान हैं, वैसा कोई भाव अपने में प्रगट करे तो वह भगवान का भक्त कहलाये न ! भगवान इन्द्रियों से नहीं जानते, इसलिए वे इन्द्रियों से भिन्न हैं, रागरहित हैं और पूर्ण ज्ञानमय हैं, ऐसा ही अपना आत्मा है, स्वयं भगवान से किंचित् भी अपूर्ण या कम नहीं है - ऐसी श्रद्धा से धर्म का प्रारम्भ होता है और यही भगवान की भक्ति है।

(2) भगवान के दर्शनों का फल

जो जीव धर्म करना चाहता है, उसे धर्म करके अपने में बनाये रखना है, स्वयं जहाँ रहे वहाँ धर्म साथ ही रहे - ऐसा धर्म करना है। धर्म यदि बाह्य पदार्थों से होता हो, तब तो वे बाह्य पदार्थ हट जाने से धर्म भी मिट जायेगा। इसलिए ऐसा धर्म नहीं होता। धर्म तो अंतर में आत्मा के आश्रय से ही है, आत्मा के अतिरिक्त बाह्य के किसी पदार्थ के आश्रय से आत्मा का धर्म नहीं होता। लोग भगवान के दर्शन करने जाते हैं, वहाँ ऐसा मान लेते हैं कि हम धर्म कर आये....मानो भगवान के निकट

उनका धर्म हो। अरे भाई ! यदि बाह्य में भगवान के दर्शनों से तेरा धर्म हो, तब तो भगवान का दर्शन करे तबतक धर्म रहे और वहाँ से जाने पर तेरा धर्म भी मिट जाये...अर्थात् घर में तो किसी को धर्म हो ही नहीं सकेगा। जैसे भगवान वीतराग हैं, वैसा ही भगवान मैं हूँ – ऐसा भान करके अंतर में चैतन्यमूर्ति भगवान का सम्यक्दर्शन करे तो उन भगवान के दर्शनों से धर्म हो और वे भगवान हों तो जहाँ जाये, वहाँ साथ में ही हैं, इसलिए वह धर्म भी सदैव बना ही रहता है। यदि एक बार भी ऐसे भगवान के दर्शन करे तो जन्म-मरण दूर हो जाये।

(3) आत्मा में भगवान की प्रतिष्ठा करे, वह भगवान होता है

भगवान की स्तुति में अनेक लोग कहते हैं कि – हे नाथ ! हे जिनेन्द्र ! आप पूर्ण वीतराग हो, सर्वज्ञ हो, किन्तु मेरा आत्मा भी रागरहित सर्वज्ञस्वरूप है – इसप्रकार अपने आत्मा की श्रद्धा को भी साथ में मिलाकर यदि भगवान की स्तुति करे, तभी सच्ची स्तुति है। यहाँ भगवान की प्रतिष्ठा होती है, उसमें भी भगवान का भक्ति में ऐसा ही लक्ष रखना चाहिए, जो ऐसा लक्ष रखता है, उसी ने वास्तव में भगवान की स्थापना की – ऐसा कहा जायेगा....उसने अपने आत्मा में भगवान की प्रतिष्ठा की मानी जायेगी...वह अल्पकाल में साक्षात् भगवान हो जायेगा।

(4) आत्मा की समझ और भक्ति का भाव

लोग धर्म करना मानते हैं, किन्तु जब ज्ञानी उनसे आत्मा की पहिचान करने को कहते हैं, तब वे कहते हैं कि कौन जाने आत्मा कहाँ होगा ? और कैसा होगा ? उसकी कुछ भी खबर नहीं पड़ती। ज्ञानी कहते हैं कि भाई ! जिसे धर्म करना है, उसे जाने बिना तू धर्म कैसे करेगा ? कहाँ करेगा ? आत्मा को जाने बिना उस ओर उन्मुख कैसे होगा ? और आत्मोन्मुख हुए बिना तुझे धर्म कहाँ से होगा ? बिना समझे पुण्य में धर्म मान लेगा उसमें तो विपरीत दृष्टि का पोषण होगा। ज्ञानी धर्मात्मा को भगवान की भक्ति आदि का भाव आयेगा, किन्तु उसकी दृष्टि आत्मा पर पड़ी है, उसे आत्मा का भान है, उस भान में उसे प्रतिक्षण धर्म होता है। जो यथार्थ समझे उसे वीतरागी देव-गुरु-शास्त्र पर भक्ति का प्रशस्त राग आये बिना नहीं रहेगा। भगवान की भक्ति के भाव का निषेध करके जो खाने-पीने आदि के अशुभराग में युक्त हो, वह तो मरकर दुर्गति में जायेगा। वीतरागी आत्मा का लक्ष हो और तीव्र राग दूर न हो, यह कैसे हो सकता है ? मेरा स्वरूप ज्ञान है, राग मेरा

स्वरूप नहीं है – इसप्रकार जो सत्य को जानता है, उसके लक्ष्मी आदि की ममता सहज ही कम हो जाती है और भगवान की भक्ति-प्रभावना आदि का भाव उछलता है। तथापि वहाँ वह जानता है कि यह राग है, यह कहीं धर्म नहीं है। अंतर में शुद्ध चिदानन्दस्वरूप को जानकर उसे प्रगट किए बिना जन्म-मरण दूर नहीं होगा।

(5) सीमंधर भगवान की सच्ची भक्ति और उस भक्ति का फल मुक्ति

देखो....धर्म की यह यथार्थ बात मिलना अति दुर्लभ है...बाह्य साधु होकर सबकुछ छोड़कर जंगल में जाकर सूख जाये, तथापि यह वस्तुदृष्टि प्राप्त नहीं हो सकती....आजकल लोगों को सत्य बात सुनने को मिलना भी दुर्लभ हो गया है। जिसकी स्व के ऊपर दृष्टि नहीं पड़ी है, उसे धर्म कहाँ से हो सकता है। धर्म तो आत्मा से होता है, इसलिए प्रथम पर से निराले आत्मस्वभाव की श्रद्धा करे तो धर्म हो, इसके अतिरिक्त बाह्य में कहीं धर्म नहीं मिल सकता – ऐसा भान करना ही सीमंधर भगवान की सच्ची भक्ति है और उस भक्ति का फल मुक्ति है।

– सोनगढ़ प्रतिष्ठा महोत्सव के प्रसंग पर फाल्गुन शुक्ला 2 के प्रवचन में से

****

महोत्सव-समाचार

फाल्गुन शुक्ला दोज के दिन तीर्थधाम सोनगढ़ में श्री सीमंधरनाथ भगवान को पधारे हुए दस वर्ष पूर्ण हुए और ग्यारहवाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ। फाल्गुन शुक्ला दोज आने से कुछ दिन पूर्व इस प्रतिष्ठा महोत्सव का अठाई महोत्सव मनाने का निश्चय हुआ...और भगवान के सन्मुख भक्ति में – 'कंकु छांटी कंकोत्री मोकलो....प्रभु भक्तो आवे सहु भावे....' इस (गुजराती भाषा के) स्तवन द्वारा भक्तजनों को भावपूर्ण कुंकुम-पत्रिका भेजी गई।

फाल्गुन कृष्णा सप्तमी

फाल्गुन शुक्ला दोज निकट आ रही थी...इससे आज भक्ति द्वारा सीमंधरनाथ भगवान को महाविदेह से विहार करने के लिए पत्र लिखा कि – 'स्वस्ति श्री महाविदेह क्षेत्र में विराजमान हे

सीमंधरनाथ ! अपने भरतक्षेत्र के भक्तों की प्रार्थना स्वीकार करके आज शीघ्रातिशीघ्र विहार करके इस भरतक्षेत्र में पधारिये....'

फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी

आज प्रात:काल श्री कुन्दकुन्द श्राविकाशाला का उद्घाटन हुआ। प्रात:काल पूज्य गुरुदेव ने मंगल प्रवचन के पश्चात्, श्राविकाशाला का उद्घाटन करने के लिए प्रवचन-मंडप से मुमुक्षुओं का जुलूस निकाल कर श्राविकशाला में आया था...इस अवसर पर अजमेर की भजन मण्डली भी आ गई थी और जूलूस में भाग लिया था। श्राविकाशाला का उद्घाटन समारोह पूर्ण होने के पश्चात् पूज्य स्वामीजी ने वहाँ मांगलिक रूप से 'वंदित्तु सव्व सिद्धे' पर प्रवचन करके सिद्धों की स्थापना की थी।

इस प्रसंग पर, मुमुक्षु बहिनों के रहने आदि की असुविधा दूर करने के लिए 20 नये कमरे बनवाने का निर्णय होने पर, उसके लिए एक रूम का खर्च 1500/- रुपये के हिसाब से निम्नानुसार रकमें मुमुक्षुओं ने लिखाई थीं -

3000/- सेठ कालीदास राघवजी की ओर से दो कमरों के

1500/- सेठ बेचरलाल कालीदास की धर्मपत्नी श्री हरकोर बहिन की ओर से 2 कमरों के।

3000/- सेठी नेमिदास खुशाल तथा उनकी धर्मपत्नी श्री कंचन बहिन की ओर से 2 कमरों के।

3000/- सेठी खीमचंद जेठालाल तथा उनका मातुश्री की ओर से 2 कमरों के।

1500/- सेठ मोहनलाल वाघजीभाई की ओर से एक कमरे के।

12000/-

उपरोक्तानुसार 8कमरों की रकमें लिखाई गई हैं।

फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी

चालू कार्यक्रम के उपरांत आज दोपहर को 1 बजे से लेकर 2 तक निर्विचिकत्सा गुण सूचक उदयन राजा का संवाद बालकों ने किया था, उसमें एक सात वर्ष के बालक ने भी प्रशंसनीय काम किया था।

दोपहर को प्रवचन के पश्चात् भजन-मंडली द्वारा जिनेन्द्र भक्ति हुई थी, उस समय 'गोदी ले ले....गोदी ले ले....गोदी ले ले...' - इस भक्ति द्वारा जन्मकल्याणक प्रसंग का वर्णन किया था और उसमें जिस समय 'इन्द्राणी बाल तीर्थंकर प्रभु को गोद में लेती है' - यह दृश्य आया उस समय मुमुक्षु भक्त अति आनंदित हुए थे। तदुपरांत मंडली ने जन्माभिषेक आदि दृश्य भी भक्तिपूर्ण नृत्य द्वारा दिखलाए थे।

सायंकाल के समय श्री नेमिनाथ स्वामी के सन्मुख 'ओ.... ! नेमिजिनेश्वरजी....' - इस स्तुति द्वारा राजुल की वैराग्यमय प्रार्थनारूप भक्ति की थी।

रात्रि को 'सर्पनृत्य' के दृश्य द्वारा जैनधर्म की महिमा बतलाई थी। एक व्यक्ति सर्प के काटने से मूर्च्छित हो जाता है और कोई जिनेन्द्र भक्त वहाँ से निकलता है, मूर्च्छित पड़े हुए व्यक्ति को देखकर वह करुणाबुद्धि से जिनेन्द्र भक्ति का श्लोक पढ़कर उस पर जल छिड़कता है और उसका विष उतरने से वह व्यक्ति जिनेन्द्रदेव की भक्ति अत्यन्त प्रेमपूर्वक करता है - ऐसा दृश्य सर्पनृत्य में दिखलाया गया था।

तत्पश्चात् 'आरती नृत्य' हुआ था। उसमें दोनों हाथों में दो दीपक अखंड प्रज्वलित रखकर भगवान के सन्मुख भक्ति नृत्य किया था...यह दृश्य देखकर जिज्ञासु भक्तों को अंतर में से ऐसी भावना जागृत होती थी कि अहो नाथ ! सीमंधर जिनेश ! आत्मस्वरूप के आश्रय से प्रगट हुए दर्शन और ज्ञानरूप दो चैतन्य-दीपकों की पवित्र ज्योति अखण्डरूप से प्रज्ज्वलित रहे, उसमें कभी भंग न पड़े....'

अन्त में, 'लहरायेगा...लहरायेगा...झंडा श्री भगवन का' - यह जैन झंडा गायन गाया था।

फाल्गुन कृष्णा अमावस

रात्रि को भजनमंडली ने नेम राजुल का संवाद किया था तथा आरती-नृत्य भी हुआ था।

फाल्गुन शुक्ला एकम

श्री कुन्दकुन्द प्रवचन मंडप की पाँचवीं जयन्ती थी। प्रात:काल पूजन के पश्चात् श्री समयसारजी की रथयात्रा निकली थी। भजन मंडली की भक्ति से रथयात्रा की शोभा और भी बढ़ गई थी। प्रवचन के पश्चात् श्रुतपूजन हुई थी।

दोपहर को, प्रभावना अंग की मुख्यतावाला, हरिषेण चक्रवर्ती का संवाद बालिकाओं ने किया था। उसमें -

'हरिषेण की माता को जहाँ सौत बताया,
रथ जैन का तेरा चले पीछे यों बताया,
उस वक्त के अनशन में सती तुमको जो ध्याया,
चक्रीश हो सुत उसके ने रथ जैन चलाया।'

यह प्रसंग लिया गया था। संवाद में आये हुए मुनिवरों के दर्शन की भावनापूर्ण भक्ति के दृश्य तथा मुनिदशा के अमृतपान के वर्णन से पूज्य गुरुदेव के अंतर में जो भावनाएँ उमड़ रही थीं, उनकी झलक दोपहर के प्रवचन में दिखाई देती थी।

रात्रि को, 'तीर्थधाम सोनगढ़' की फिल्म दिखलाई गई थी। उस फिल्म द्वारा गुरुदेव की महान धर्म प्रभावना को देखकर दूर-दूर से आये हुए जिज्ञासु बहुत प्रसन्न हुए थे।

फाल्गुन शुक्ला दोज

आज श्री सीमंधर भगवान के आगमन का मंगल-दिवस था। प्रात:काल देव-गुरु-शास्त्र के दर्शनार्थ आया हुआ भक्तमंडल जिनमंदिर की प्रदक्षिणा देता था, वह दृश्य अत्यन्त भक्तिपूर्ण था....।

'सुन्दर स्वर्णपुरीमां स्वर्णरवि आये ऊग्यो रे
भक्तजनोना हैये हर्षानन्द अपार....
श्री सीमंधर प्रभुजी पधार्या छे अम आंगणे रे...'

– इत्यादि भक्ति-भावनापूर्ण भगवान का स्वागत करके पश्चात् भक्तिभावपूर्वक दर्शन-स्तवन और पूजन हुई थी, तत्पश्चात् जिनमंदिर पर नूतन ध्वजारोहण हुआ था। आकाश में लहराता हुआ नूतन धर्मध्वज अत्यन्त शोभायमान होता हुआ महान धर्म प्रभाव को बतला रहा था।

प्रवचन के पश्चात् जिनेन्द्रदेव की भव्य रथयात्रा निकली थी। रथयात्रा के भजन-मंडली द्वारा होनेवाली –

'गा.....रे....भैया.....गा.....रे.....भैया.....गा.....

प्रभु.....गुण....गा.....तू....समय....न....गवां....'

इत्यादि भक्ति ने सबको आकर्षित कर लिया था।

दोपहर को प्रवचन के पश्चात् भक्ति हुई थी, उसमें, तीर्थंकर भगवान का जन्म होने के पश्चात् इन्द्र-इन्द्राणी भक्तिपूर्वक ताण्डव नृत्य करते हैं, वह दृश्य भजन-मण्डली ने दिखलाया था।

रात्रि को राजकोट पंचकल्याणक प्रतिष्ठा की फिल्म बतलाई गई थी।

अजमेर की भजन मण्डली ने पाँच दिन तक भक्ति की धुन जमाई थी। सोनगढ़ में सीमंधर भगवान के समवशरण की रचना देखकर अजमेर के लोग अत्यन्त आनंदित हुए थे। फाल्गुन शुक्ला तृतीया की शाम को अजमेर वापिस जाते समय, मण्डली के मंत्री डॉक्टर सौभाग्यमलजी दोशी पूज्य गुरुदेव के निकट विदा लेने आये, उससमय वे गद्गद् हो गये और आंखों में आंसू भर आये। पूज्य गुरुदेव ने उनसे कहा कि – 'तुमने आकर अच्छी भक्ति की, ऐसी भक्ति इस जीवन में नहीं देखी थी।'

सुवर्णपुरी में सीमंधरनाथ भगवान के पदार्पण के इस महोत्सव की शोभारूप मंदिर के शिखर पर मंगल कलश के रूप में फाल्गुन शुक्ला चतुर्थी के दिन जिनमंदिर में विशिष्ट भावपूर्ण उल्लासमय भक्ति हुई थी और महान प्रभावपूर्वक मंगल-जयकार के साथ यह महोत्सव समाप्त हुआ था।

इसप्रकार महोत्सव के दिनों में ज्ञान एवं भक्ति की महान धुन लगी थी। पूज्य गुरुदेव के

श्रीमुख से प्रवाहित ज्ञानसरिता और दूसरी जिनेन्द्रभक्ति की सरिता – दोनों पावन सरिताओं का मुमुक्षुजनों के हृदयसरोवर में संगम होता था।

सुवर्णपुरी में सीमंधर भगवान के पदार्पण के दस वर्ष की पूर्णता का यह पवित्र महोत्सव मुमुक्षुओं के हृदय में सदैव के लिए स्मृति बनकर रहेगा।

भगवान की भावना किसे जाग्रत होती है ?

धर्मात्मा अपने भाव को देखता है, अपने भाव में राग दूर होकर वीतरागता की वृद्धि कैसे होती है ? वही देखता है। वीतरागता के निमित्त तो निमित्त के कारण होते हैं। भीतर स्वयं भगवान ही बैठा है, उस भगवानपने का जिसे विश्वास जम गया, वह सविकल्प अवस्था में बाह्य में वीतरागी प्रतिबिम्ब में भगवान की स्थापना करता है। अपने शुद्ध भाव का निक्षेप करके कहता है कि 'यह भगवान है।' वहाँ भाव तो अपना है न ! प्रतिष्ठा के पश्चात् जब श्री सीमंधर भगवान जिनमंदिर में पधारते थे, उस समय भक्त कहते थे कि पधारो....भगवान पधारो! हे भगवान! हम आपको यहाँ पधरा रहे हैं...इसलिए भीतर जो आप जैसा निजस्वरूप है, वह प्रगट होगा ही...बाह्य में भगवान की स्थापना है और अंतर में साक्षात् भगवान हैं...जिसे भावों में भगवानपने का विश्वास जम गया, वह निमित्त में 'यह भगवान है' – ऐसी स्थापना करता है...वह भीतर विद्यमान भगवान का स्वीकार करके भगवानपना प्रगट किये बिना नहीं रहेगा। ओह ! धन्य है !....ऐसी भावना किसे जागृत होती है ? जिसे अंतर में भगवान जैसे अपने स्वभाव का भास हुआ है, उसे ऐसी भावना होती है और वह अल्पकाल में भगवान हुए बिना नहीं रहेगा।

– सोनगढ़ प्रतिष्ठा महोत्सव के प्रवचन से

सीमंधर भगवान के संबंध में जानने योग्य कुछ बातें

सीमंधर भगवान के परम भक्त परमपूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी के पवित्र हस्त से सौराष्ट्र में पाँच बार पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में 97 दिन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा हुई हैं....उनमें से दस प्रतिमाएँ सीमंधर भगवान की हैं। जिसप्रकार ढाई हजार वर्ष पूर्व इस भरतभूमि पर श्री महावीर भगवान तीर्थंकररूप से विचर रहे थे, उसीप्रकार इस समय भी इसी पृथ्वी पर स्थित 'महाविदेह' नामक क्षेत्र में श्री सीमंधर भगवान तीर्थंकररूप से साक्षात् विचर रहे हैं। वे इस समय अरिहंत पद पर विराज रहे हैं....'णमो अरिहंताणं' – ऐसा हम बोलते हैं, उसमें श्री सीमंधर भगवान को भी नमस्कार आ जाता है। जहाँ श्री सीमंधर भगवान विराजमान हैं, वह महाविदेह क्षेत्र यहाँ से पूर्व दिशा में इतनी दूरी पर स्थित है कि किसी भी सवारी द्वारा इस समय वहाँ नहीं पहुँचा जा सकता। तथापि जिस जंबूद्वीप में अपना भरतक्षेत्र है, उसी द्वीप में महाविदेहक्षेत्र आया है, दोनों एक ही द्वीप में हैं...इसलिए जिस द्वीप में श्री सीमंधर भगवान विचर रहे हैं, उसी द्वीप में हम सब रहते हैं।

श्री सीमंधर भगवान का दूसरा नाम स्वयंप्रभ भगवान हैं, उनके पिता का नाम श्रेयांसराय और माता का नाम सत्यदेवी है। उनकी काया कंचनवरणी है, देह की ऊंचाई पाँच सौ धनुष है। उनका लच्छन वृषभ चिह्न है। उनका जन्म सीता नदी के उत्तर में स्थित पुष्कलावती देश की पुंडरीकिणी नगरी में हुआ था, उनकी आयु 84 लाख वर्ष पूर्व की है, उसमें अभी लगभग 83 लाख पूर्व बीत चुके हैं। उनका समवसरण बारह योजन व्यास का है, उनके समवसरण में मनुष्यों की सभा के नायक श्री पद्मरथ चक्रवर्ती हैं। जब श्री कृष्ण वासुदेव की रानी रुक्मिणी का पुत्र प्रद्युम्न कुमार खो गया था, उस समय यहाँ से श्री नारदजी प्रद्युम्न कुमार का चारित्र सुनने के लिए

महाविदेहक्षेत्र में सीमंधर भगवान के समवसरण में गये थे। उस समय पद्मरथ चक्रवर्ती ने आश्चर्यपूर्वक भगवान से पूछा था कि भगवान! 'यह क्या है....यह कौन है ?' – ऐस विस्तृत वर्णन श्री प्रद्युम्न चरित्र के छट्ठे सर्ग में आता है।

और 'पद्मपुराण' में भी मुनिसुव्रतनाथ के समय में हुए नारद का महाविदेह में सीमंधर भगवान के पास जाने का वर्णन आता है, उसमें इसप्रकार कहा है – जिनेन्द्रदेव की कथा में जिनका मन आसक्त है, ऐसे दशरथ महाराज के दरबार में नारदजी आते हैं और महाराज दशरथ उनसे नवीन समाचार पूछते हैं, उस समय, जिनेन्द्र चंद्र का चरित्र प्रत्यक्ष देखने से जिन्हें परम हर्ष उत्पन्न हुआ है, ऐसे वे नारद कहते हैं कि हे राजन! मैं महाविदेहक्षेत्र गया था, वह क्षेत्र उत्तम जीवों से भरपूर है, वहाँ जगह-जगह श्री जिनराज के मंदिर हैं और जगह-जगह महामुनि विराज रहे हैं, वहाँ धर्म का महान उद्योत है, श्री तीर्थंकरदेव चक्रवर्ती, बलदेव-नारायण, प्रतिनारायण वहाँ उत्पन्न होते हैं, वहाँ जाकर पुण्डरीकिणी नगरी में मैंने श्री सीमंधर स्वामी का तपकल्याणक देखा, तथा जिसप्रकार यहाँ श्री मुनिसुव्रतनाथ का सुमेरुपर्वत पर जन्माभिषेक सुना है, वैसा श्री सीमंधर स्वामी के जन्माभिषेक का महोत्सव मैंने सुना....उनके तपकल्याणक को तो मैंने प्रत्यक्ष ही देखा है।

तदुपरान्त, प्रभु श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव सीमंधर भगवान के समवसरण में गये थे और आठ दिन तक वहाँ रहकर भगवान की दिव्यध्वनि का श्रवण तथा वहाँ के श्रुतकेवली आदि मुनिवरों का परिचय किया था....यह बात तो सुप्रसिद्ध है। 'समवशरणस्तुति (गुजराती) में उस प्रसंग का वर्णन निम्नानुसार किया है –

(1)

बहु ऋद्धिधारी कुन्दकुन्द मुनि हता अे कालमां....
जे श्रुतज्ञान प्रवीण ने अध्यात्मरत योगी हता...
आचार्य ने मन अेकदा जिनविरह ताप थयो महा....
रे ! रे ! सीमंधर जिनना विरहा पडया आ भरतमां।

(2)

अेकाअेक छूटयो ध्वनि जिनतणो 'सद्धर्म वृद्धि हजो!'
सीमंधर जिनना समोशरणमां, नाथ अर्थ पाम्या जनो,
संधिहीन ध्वनि सूणी परपदे आश्चर्य व्याप्युं महा,
थोडीवार महीं तहीं मुनि दीठा अध्यात्ममूर्ति समा।

(3)

जोडी हाथ ऊभा प्रभु-प्रणमतां शो भक्तिमां लीनता।
नानो देह अने दिगंबर दशा, विस्मित लोको थता।
चक्री विस्मय भक्तिथी जिन पूछे 'हे नाथ ! छे कोण आ ?'
'छे आचार्य समर्थ अे भरतना सद्धर्मवृद्धि करा।'

(4)

सूणी अे बात जिनवरनी, हर्ष जन हृदये वहे,
नानकडा मुनि कुंजरने 'अेलाचार्य' जनो कहे।

(5)

प्रत्यक्ष जिनवर दर्शने बहु हर्ष अेलाचार्यने,
ऊँकार सूणतां जिनतणो अमृत मल्युं मुनिहृदय ने।
सप्ताह अंक सूणी ध्वनि श्रुतकेवली परिचय करी,
शंका निवारण सहु करी मुनि भरतमां आव्या फरी।।

(उपरोक्त दृश्य के लिए सोनगढ़ में सीमंधर प्रभु का समवशरण देखिये)

जहाँ श्री सीमंधरादि तीर्थंकरादि विचर रहे हैं - ऐसे विदेहक्षेत्र के देश अतिवृष्टि, अनावृष्टि या मरो आदि रोगों से रहित हैं और जिनदेव के अतिरिक्त कोई कुदेव, कुलिंग या कुमत भी वहाँ नहीं होते, वे देश सदैव केवली भगवंत और तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि श्लाका पुरुषों से परिपूर्ण होते हैं।

(धन्य हो उस धर्मभूमि के धर्मात्माओं को.....)

भगवान श्री कुन्दकुन्द-कहान जैन शास्त्रमाला के

हिन्दी प्रकाशन

परम पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के आध्यात्मिक प्रवचनों का अपूर्व लाभ लेने के लिये जिज्ञासु निम्नलिखित पुस्तकों की स्वाध्याय अवश्य करें!

समयसार -प्रवचन (भाग-1)	6-0-0
समयसार -प्रवचन (भाग-2)	5-0-0
मोक्षमार्गप्रकाशक की किरणें	1-6-0
दशलक्षण-धर्म	0-12-0
सम्यग्दर्शन	2-8-0
भेदविज्ञानसार	2-0-0
मूल में भूल	0-12-0
मुक्ति का मार्ग	0-10-0
आत्मधर्म की फाइलें	3-12-0

उपरोक्त पुस्तकों में 'सम्यग्दर्शन' नाम की पुस्तक अभी प्रगट हुई है, जो प्रत्येक जिज्ञासु को अवश्य पढ़ने योग्य है।

[डाकव्यय अतिरिक्त]

प्राप्तिस्थान —

श्री जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक : चुनीलाल माणेकचंद रवाणी, शिष्ट साहित्य मुद्रणालय, मोटा आंकडिया (अमरेली)
प्रकाशक : जमनादास माणेकचंद रवाणी, अनेकान्त मुद्रणालय, मोटा आंकडिया (अमरेली)